ॐ श्री परमात्मने नमः

अथ

योग तत्त्व

(ऐहलौकिक व पारलौकिक दो भाग)

अर्थात्

उत्तराखण्ड में तपस्या किये हुये योगीराज के स्वानुभव
तथा अनेकों महर्षियों के महत्वपूर्ण अनुभव
योगशास्त्र के अनेक प्रमाणों सहित

भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम् ।

व्याकरणाचार्य पं० दामोदर शास्त्री भारद्वाज ने
शुद्ध सरल भाषा में छपा कर प्रकाशित किया ।

प्रथम संस्करण
१५००
वि० सं० २०१५

(सूचना)
(विना मोहर की पुस्तकें चोरी की समझी जायेंगी)

5)—
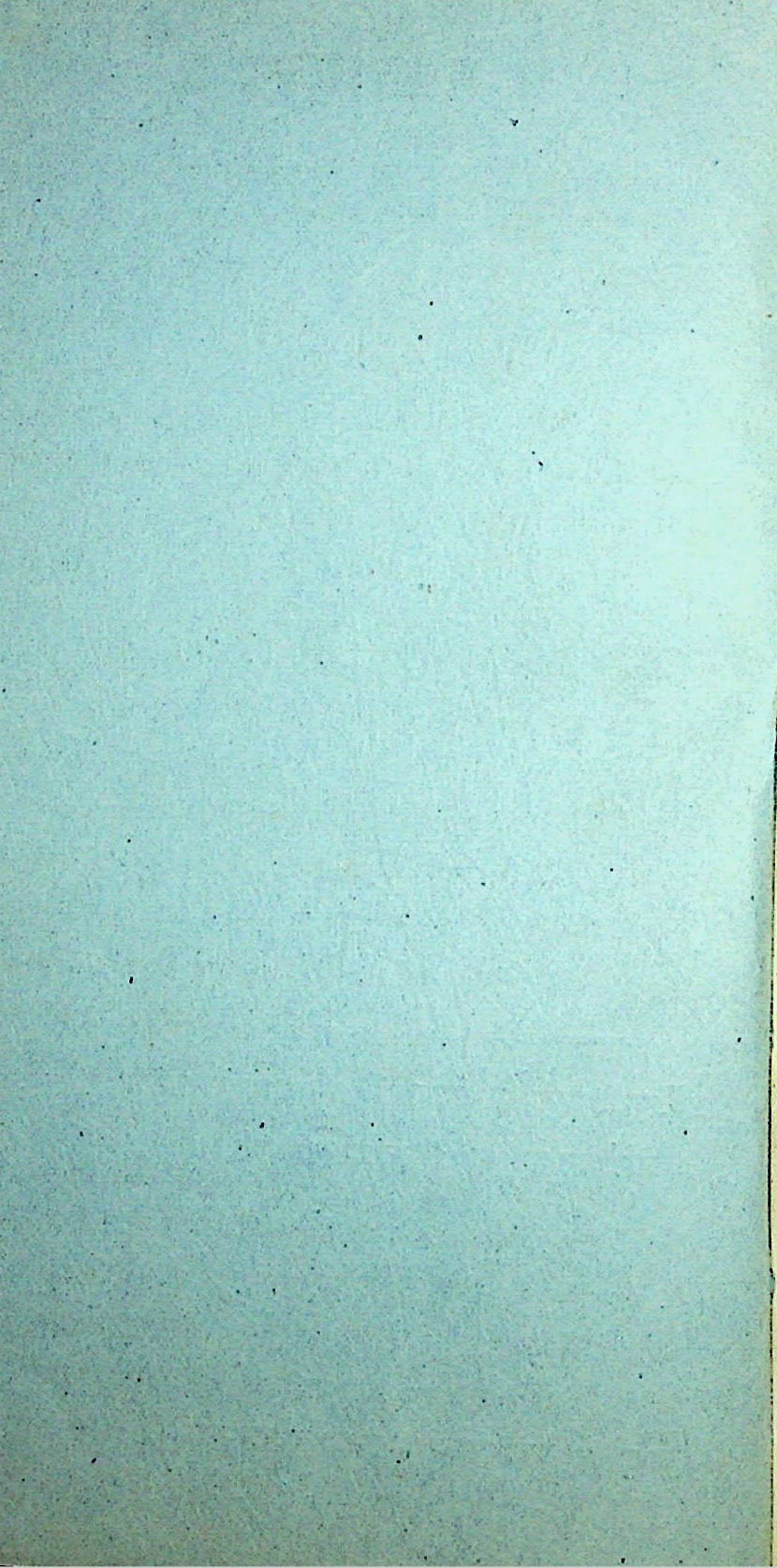
॥ प्रस्तावना ॥

माननीय सज्जनों ! आज यह हर्ष की बात है जो मैं आपके सम्मुख योग तत्त्व नाम की पुस्तक ऐहलौकिक तथा पारलौकिक दो भागों में निर्माण कर रख रहा हूँ। यह सब उत्तराखण्ड में तपस्या किये हुये, योगीराज की कृपा है। जो योग प्रत्येक मानव के इहलोक तथा परलोक में सुख का प्रधान कारण है और मोक्ष के लिये परम हेतु है, जिसका अनेकों शास्त्रों में अनेक प्रकार से विवरण किया गया है, योगेश्वर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने इसको भली भाँति गीता में वर्णन किया है तथा श्रीमद्भागवत में अपने प्रिय भक्त उद्धवजी के प्रति वर्णन किया है, तथा योगी शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् के प्रति वर्णन किया है। एवं इसी योग को शिवजी ने पार्वतीजी के प्रति वर्णन किया है, ऐसे तो ब्रह्मा विष्णु महेश ही योग मय हैं, योग के द्वारा ही पितामह ब्रह्मा ब्रह्मपद को प्राप्त हुये हैं। ऐसे महान् योग जो भोग और मोक्ष का हेतु है, इसको इस पवित्र भारत भूमि में महर्षि याज्ञवल्क्य, महर्षि पतञ्जलि तथा गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि अनेकों योगियों ने विस्तार से फैलाया है और भारत के गौरव को बढ़ाया है। वसिष्ठ महामुनि ने अपने प्रिय शिष्य भगवान् श्री रामचन्द्रजी के प्रति इसी योग को वर्णन किया है। हमारी इसी प्रधान योग विद्या के कारण अध्यात्म योग विद्या में यह हमारा भारत सर्व राष्ट्रों में शिरोमणि अग्रगण्य माना जाता है। इसी परम योग विद्या को प्राप्त करने के लिये अमेरिका आदि अन्य देशों के मनुष्य भारत में आकर यहाँ सन्त महात्माओं के शिष्य बनकर भी प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। यही हमारा अष्टांग योग पहले भारत में घर २ फैला हुआ था, परन्तु वर्तमान समय में जनता के आहार विहार और संयम नियम नहीं रहने से बहुत कुछ इसका लोप हो गया, और भारत में कहीं २ ही ढूंढने पर इसके जानकार आचार्य मिलते हैं ऐसे समय में उत्तराखण्ड में तपस्या किये हुये योगिराज की इच्छा हुई कि भारत का परम सौभाग्य जो पुरातन योग है उसका प्रचार हो ऐसा

विचार कर उन्होंने मेरे ऊपर कृपा की और अपने तपश्चर्या के स्वानुभव मुझे प्रदान किये, उस शक्ति को लेकर मैंने योग तत्त्व नाम की पुस्तक ऐहलौकिक व पारलौकिक दो भागों में निर्माण की है। जिसमें महात्माजी के अनुभव, अनेक महर्षियों के अनुभव तथा अनेक योग शास्त्रों के प्रमाण देकर यह पुस्तक एक विचित्र ढंग से निर्माण की गई है—इस पुस्तक की प्रशंसा करना मेरे मुख से शोभा नहीं देता **"हाथ कङ्गन को आरसी क्या"** आप स्वयं ही इस पुस्तक को अवलोकन कर इसके महत्व को समझ सकेंगे।

आशा है कि इस पुस्तक में दी गई योग क्रियाओं के द्वारा आप संयम नियम पूर्वक सफलता प्राप्त कर पुनः अपने भारत में योग की जाग्रति करके अध्यात्म योग विद्य में पहले के समान ही भारत को सब राष्ट्रों में शिरोमणि ही बनाये रखेंगे, और मेरे परिश्रम को सफल कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

प्रार्थना है कि यदि प्रेस कर्मचारी आदि की अनवधानता से कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों तो उसे सम्भाल कर पढ़ने की कृपा करेंगें। **शुभम्**

निवेदक—

दामोदर शास्त्री भारद्वाज

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या

योगतत्वे द्वितीयो भाग समाप्तः ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अथ योग तत्त्व प्रारम्भः

ॐ अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधार ॐकार गुरवे नमः ।
ॐ श्री ओंकार गुरवे नमः

॥ ऐहलौकिको नाम प्रथमो भागः ॥

ऐहलौकिक योग का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन को आरोग्य रखते हुए दीर्घ जीवन का लाभ प्रदान करना तथा रोगग्रस्त मनुष्यों को नीरोग बनाना और इस लोक में सुखी रखना है। इसी से इसका नाम ऐहलौकिक योग है। वास्ते प्रत्येक मानव का कर्तव्य (धर्म) है कि योग के आसन-प्राणायाम आदि क्रियाओं के द्वारा जीवन को नीरोग और दीर्घायु बना लेवें।

तथा समस्त योग की क्रियाओं को गुरु के द्वारा ही सीख कर गुरु के सन्मुख ही सिद्ध करना चाहिये। पुस्तकों में पढ़ कर केवल पुस्तकों द्वारा ही योग प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। पुस्तकों तथा चित्रों द्वारा अभ्यास करने पर हम स्वास्थ्य के लिये हानिकर समझते हैं। वास्ते इस योग विद्या को किसी अनुभवी योग्य गुरु द्वारा ही प्राप्त करके सिद्ध करना चाहिये।

ऐहलौकिक योग क्रियाओं में ग्रन्थ के बढ़ जाने एवं विषय के विस्तृत हो जाने के भय से हम ऐहलौकिक योग-क्रियाओं को इस पुस्तक में सूक्ष्म रूप से लिख रहे हैं।

प्रत्येक एहलौकिक योग क्रियाओं को पूर्ण जानकारी तथा सीखने के लिये योगाश्रमों से बात कर सकते हैं।

स्वास्थ्यलाभ व दीर्घजीवन के लिये योग की क्रियाओं को आरम्भ करने से प्रथम पथ्य भोजन का नियम रखना आवश्यक है। वास्ते हम यहां आरोग्य एवं दीर्घजीवन तथा योग क्रियाओं में सहायता पहुंचाने वाले पथ्य भोजन को स्वानुभव तथा शास्त्रों के वचनानुसार लिखते हैं।

॥ पथ्य भोजन ॥

योगशास्त्रे—

गोधूम शालि यव षाष्टिक शोभनान्नम्
क्षीराज्य ग्रन्थि नवनीत सिता मधूनि।
शुण्ठी पटोलक फलादिक पञ्चशाकम्
मुद्गादि दिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथ्यम् ॥ १ ॥

भावार्थ—गेहूं की रोटी व थूली, यव तथा साठ दिन में ही खेतों में पकने वाला चावल, व राजगिरा, सामा (भगर) साबूदाना मोरिया तथा दूध घृत सूरण मक्खन शर्करा शहद सूंठ परवल का शाक फलादिक में मोसमी केला चीकू अनार सेवफल आंवले का मुरब्बा तथा पंचशाकम् इस प्रमाण से दूधी (लौकी) तरोई, गिलखी पालक बथुआ तांदल भाजी चंदलोई भाजी डोंडी भाजी सेवन करना चाहिये। तथा मूंग की दाल, आदि शब्द से खिचड़ी तथा बहता हुआ निर्मल जल इन वस्तुओं को हम आसन प्राणायाम आदि ऐहलौकिक अभ्यास के लिये हितकर समझते हैं।

॥ अत्याहार ॥

आह्निके—

अत्याहाराद् भवेद्रोगी ह्यल्पायुश्च दरिद्रता ।

भावार्थ—अधिक भोजन करने से मनुष्य रोगी अल्पायु और दरिद्री हो जाता है। वास्ते सदैव प्रामाणिक भोजन करना चाहिये और भोजन केवल दिन में ही करना चाहिये। रात्रि के समय केवल दूध लेकर रहना चाहिये ।

॥ परिमित भोजन ॥

पेट के आधे भाग को अन्न से भरे और पाव भाग को जल से भरे तथा शेष पाव भाग को वायु संचार के लिये खाली रखे । इस को शास्त्र में प्रामाणिक भोजन कहा है ।

मेरे स्वानुभव से प्रत्येक साधारण मनुष्यों के लिये तो यह ठीक हो सकता है कि पाव (२० तोले) गेंहू के आटे की रोटी और एक छटांक (५ तोले) भात तथा उसके साथ में लगता दाल शाक यह मनुष्यों के लिये सामान्य भोजन हो सकता है। इतना भोजन प्रतिदिन दिन में ग्यारह बजे के लगभग करना ठीक समझता हूं ।

॥ दुग्ध पान ॥

दिवसे हानिदं दुग्धं रात्रौ बल प्रदायकम् ।

भावार्थ—दिन में सुबह पीया हुआ दूध लाभप्रद नहीं होता और रात्रि का पीया हुआ दूध बलदायक पौष्टिक होता है ।

॥ कारणमाह ॥

॥ हिमालयस्थ योगिवचनम् ॥

दिवसे रश्मियुक्तत्वाद् रात्रौ दुग्धं बलप्रदम् ।
रात्रौ च रश्मि रहितं प्रातर् रोग प्रदायकम् ॥

भावार्थ–हमको हिमालय में एक योगीराज मिले, उन्होंने हमें उपदेश किया कि जिस दूध में सूर्य की रश्मियों की शक्ति नहीं है वह दूध रोग प्रद होता है। आशय यह है कि दिन में गायें जंगल में चरने को जाती हैं और सूर्य की रश्मियों को खींचकर लाती हैं और शाम को दूध देती हैं तो उस दूध में सूर्य रश्मियों का अंश होने से नीरोग और पौष्टिक होता है। और रात्रि में गायें घरों में ही रहती और सूर्य रश्मियां भी नहीं मिलती इससे रश्मिहीन दूध प्रातः देती हैं, वह मनुष्यों के जीवन को रोगी बनाता है। उस दूध के सेवन से कुछ लाभ नहीं। इसी प्रकार महिषी (भैंस) में सूर्य की रश्मियों को खींचने की शक्ति नहीं है गरमी सहन नहीं कर सकती, वास्ते महिषी का दूध सर्वथा लाभ नहीं कर सकता ।सूर्य रश्मियों को खींचने में गाय ही समर्थ है, महिषी नहीं।

॥ त्याज्य दुग्ध ॥

संस्कार भास्करे –

रुग्णा वृद्धा प्रसूता च वन्ध्या संधिन्यमेध्यभुक् ।
मृत त्सा च नैतासां ग्राह्यं मूत्र शकृत्पयः ॥

भावार्थ–रोगी गाय, वृद्धगाय प्रसूता गाय वंध्यागाय

भोग में आसक्त गाय दुर्गन्ध युक्त मलादिक अपवित्र वस्तुओं को खाने वाली गाय, जिसका बछड़ा मर गया हो ऐसी गाय इतनी गायों का गोमूत्र-गोमय तथा दूध काम में लेना ठीक नहीं, ऐसा शास्त्र वचन है।

॥ धारोष्णपय ॥

दूध निकालने के पश्चात् जितने समय तक दूध की गरमी शान्त न हो वहां तक ही दूध का सेवन लाभप्रद होता है। बाद में किसी प्रकार का गुण नहीं करता।

॥ ठंडे दूध का सेवन स्वानुभव ॥

यदि धारोष्ण की गरमी शान्त होकर दूध ठंडा पड़ गया हो तो उसको दो प्रकार से ही सेवन करना ठीक समझते हैं। या तो उसे साबूदाना के साथ लेवे। या रस अर्थात् पारा-गंधक के साथ लेवे तब तो लाभप्रद हो जाता है, अन्यथा दूध लाभप्रद नहीं हो सकता ऐसा मेरा स्वानुभव है।

॥ गरम दूध ॥

केवल दूध को कच्चा ही पीना हम श्रेष्ठ समझते हैं कारण—दूध को अग्नि पर गरम करने से गरम करते समय जो उस में से भाप निकलता है उस भाप के साथ उसकी शक्ति कम पड़ जाती है। यदि उस पर मलाई (तरी) पड़ जावे तब तो वह दूध बहुत ही कमजोर बन जाता है, कारण—भाप और तरी के साथ उसका विटामिन बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। वास्ते हम कच्चा ही दूध पीना लाभप्रद समझते हैं।

॥ दुग्धे उत्तमोत्तमपक्षः ॥

पर्वतीय योगीराज

श्यामाः श्वेताश्च पीताश्च ह्युत्तमाधममध्यमाः !

भावार्थ—काली गाय का दूध बहुत ही उत्तम माना गया है पीली गाय का दूध उससे नीचे दर्जे (मध्यम) का, तथा सफेद गाय का दूध उससे भी नीचे दर्जे का (निम्न) माना गया है।

॥ एकामृतम् ॥

स्वानुभवे—एक गाय का दूध अमृत के समान लाभ पहुंचाता है। यह दूध धारोष्ण गरमी से ठंडा भी पड़जावे तो भी सेवन करना ठीक समझते हैं। अर्थात् एक ही गाय का दूध हो और उसमें दूसरी गाय का दूध नहीं मिलाया हो ऐसे दूध (प्रहरे सेवनम्) याने तीन घण्टे तक भी ले सकते हैं। और यदि शीत काल हो तो छह घण्टे तक भी सेवन हो सकता है। यह दूध धातुओं पर कोप नहीं करता। अन्य सर्वदूध धारोष्ण के ठंडे होने के बाद धातुओं पर कोप करते हैं।

जिन लोगों की प्रातः समय दूध चाय आदि लेने की आदत पड़ी है उन को हम दूध चाय की जगह प्रातः सेवन के लिये दूसरे उपाय बताते हैं।

॥ प्रातः सेवने लाभः ॥

हिमालयस्थयोगिराज वचनम्

घृतंवामलकंप्रातरुषः काले पिबेज्जलम् !
सर्वव्याधि विनिर्मुक्तो ह्यायुरारोग्यमाप्नुयात् ॥

भावार्थ–पिछली रात्रि के ठीक चार बजे नित्य आधा सेर (१ पौन्ड) जल पीवे, बाद में ठीक सात बजे सुबह आमले का मुरब्बा एक छटांक (५ तोले) के लगभग लेवे, पश्चात् ग्यारह बजे तक कुछ भी नहीं खाना और ग्यारह बजे के लगभग भोजन करना। इस प्रकार नित्य नियम रखने से शरीर नीरोग और चङ्गा रह सकता है।

यदि आमले का मुरब्बा प्राप्त न हो सकता हो तो उसकी जगह घृत का भी सेवन कर सकते हैं।

॥ प्रातः घृत सेवन विधिः ॥

ठीक चार बजे सुबह एक रतल पानी पीवे पश्चात् सात बजे एक तोला घृत में आठ या दश काली मिर्च डाल कर अग्नि पर रखे, जब काली मिर्च घृत के ऊपर तैरने लग जावे तो फौरन घृत को अग्नि से अलग करले, इस बात का पूरा ध्यान रहे कि घृत जलने न पावे। बाद में घृत कुनकुना हो जावे तब काली मिर्च खा जावे, और ऊपर से घृत पी जावे। उस के बाद चार घण्टे तक कुछ भी नहीं लेवे। बाद में ठीक ग्यारह बजे भोजन करे। इस नियम से घृत का सेवन करने से वह १ तोला घृत पाव घृत के समान शरीर में काम करता है और शरीर को मजबूत करता, तथा रक्त का शोधन कर रक्त वर्धक होता है। यह आमले तथा घृत का प्रयोग हमें हिमालय में महायोगीराज महाराज ने कहा था। और इस में हमारा स्वानुभव भी है। वास्ते जिन महाशयों को सुबह दूध चाय आदि का महावरा है। उनको दूध चाय की जगह इसको सेवन करके अनुभव करना चाहिये। परन्तु हम प्रातः दूध चाय का

सेवन किसी प्रकार ठीक नहीं समझते।

दूध सेवन के आवश्यक खास खास प्रयोग हमने यहां लिखे हैं। परन्तु दूध के विषय में हम और भी बहुत जानकारी रखते हैं, जो प्रत्यक्ष में समझा कर उसका हानि लाभ भी प्रत्यक्ष देह में सिद्ध करा सकते हैं।

॥ भोजन के गुण ॥

सत्त्वरजस्तमेति महासत्त्वादि भोजने भेदाः ।

भावार्थ–एक ही वस्तु का भोजन महासात्त्विक दो वस्तु का भोजन सात्त्विक और तीन वस्तुओं का भोजन रजोगुणी तथा चार वस्तुओं का भोजन तामसी समझना चाहिये। यदि चार वस्तुओं को इकट्ठी करके खाया जावे तो उनकी रजोगुण में गणना हो सकती है।

इस प्रकार हमने ऐहलौकिक योग क्रिया के भाग में पथ्य भोजन जो मनुष्यों को आरोग्य तथा दीर्घ जीवन देता है उसे सूक्ष्मरूप से लिखा है। शुभम्। पथ्यभोजन मार्गः।

अब हम योगक्रिया सीखने के अभिलाषी लोगों के लिये प्रथम शरीर शुद्धि के लिये सूक्ष्म रूप में षट्कर्मों का वर्णन करते हैं। जिन छह प्रकार की योग क्रियाओं द्वारा शरीर पवित्र होता है।

॥ षट्कर्म ॥

नौलिर्बस्तिश्च नेतिश्च धौतिश्च कुंजरिस्तथा ।
तथा च त्राटकश्चैव षट्कर्माणि दिने दिने ॥

भावार्थ–नौलि बस्ति नेति धौति कुँजरी और त्राटक यह छह प्रकार के कर्मों को देह की शुद्धि के लिये तथा आरोग्य रखने के लिये नित्य करना चाहिये।

अब हम प्रथम छह कर्मों के अन्तर्गत नौलि कर्मों को कहते हैं।

नौलि तथा उसके गुण

इसके सीखने में प्रथम पेट को भीतर घुसाकर फैलाना जो योग में उड्डियान क्रिया कही जाती है। उस उड्डियान को करते-करते अपने आप नौलि देख पड़ती है जो पेट के भीतर अन्न की थैली है जिसमें खाया हुआ अन्न जाता है उस नौलि के दिखाई पड़ने पर नित्य अभ्यास करने से वह नौलि घूमने भी लग जाती है। बायें दाहिने दोनों तरफ घूमा करती है। इसको गुरू के द्वारा सीखने से जल्दी सिद्ध हो जाती है।

नौलि मन्दाग्नि को हटाती है। जठराग्नि को प्रदीप्त करती है, पाचन शक्ति बढ़ाती है। वायु के रोगों को हरण करती है तथा बस्ति कर्म धौति कर्मादि को सिद्ध कराती है। इस प्रकार नौलि के और भी अनेक गुण हैं।

बस्ति कर्म

गुदा में बांस की नली प्रवेश करे दो अंगुल नली भीतर प्रवेश करा दें और दो अंगुल बाहर रखे, उसे जल में डाल कर बांस की नली से नौलि खड़ी कर जल को खींचे। और उस जल को नौलि से घुमाकर छोड़ देने को बस्ति कर्म कहते हैं। बस्ति कर्म तथा धौति कर्म के बाद जल्दी कुछ खा लेना चाहिये। विशेष समय तक नहीं खाने से शरीर का दूषित जल खून में प्रवेश करके अनेकों रोगों को पैदा कर सकता है। हमारे स्वानुभव से तो धौति के लिये तो हम इसका विशेष

समर्थन नहीं करते, परन्तु बस्तिकर्म के पश्चात् तो शीघ्र ही कुछ खाना जरूरी है। अन्यथा दूषित जल रक्त में पहुँचने से रक्त दूषित होकर अनेकों रोगों को उत्पन्न कर सकता है। कुष्ठ भी हो सकती है। हमने दिल्ली में एक योगी जिनकी बस्ति बिगड़ जाने से शरीर में कुष्ठ उत्पन्न हो गया था देखे हैं। इस बस्ति कर्म के लिये हम प्रत्येक साधारण मनुष्यों को करने की सम्मति नहीं देते। यह तो साधु सन्यासियों आदि के काम हैं।

बहुत से लोग एनेमा से भी गुदा की शुद्धि करते हैं। परन्तु हम उसे भी ठीक नहीं मानते। एनेमा द्वारा खींचा हुआ और छोड़ा हुआ जो जल है, उस जल का तो दूषित अंश अवश्य ही भीतर रह जाता है जो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का कारण है। इससे तो बांस की नलिका से नौलि द्वारा खींचे जल से बस्तिकर्म को ठीक समझते हैं।

इन दोनों प्रकारों से गुदा की शुद्धि से तो हम प्रत्येक सर्व-साधारण मनुष्यों के लाभार्थ पातंजल योगप्रदीप में लिखे गणेश कर्म (गणेशक्रिया) द्वारा ही मल की शुद्धि करना ठीक समझते हैं। जिससे किसी प्रकार का खतरा नहीं।

॥ गणेशक्रिया ॥

शौचालय में उत्कटासन से बैठकर नौलि को बायें दाहिनी तरफ तीन चार मिनट घुमावे, बाद में मध्यमा अंगुलि को चन्दन या खोपरे के तेल में भिगो कर धीरे-धीरे गुदा में प्रवेश करे प्रथम अभ्यास में केवल मध्यमा को ही

प्रवेश करे। बाद अभ्यास दृढ हो जाने से मध्यमा और तर्जनी दोनों अंगुलियों को प्रवेश करे गुदा में अंगुलि प्रवेश करके अंगुलि को गुदा में घुमाते रहें। थोड़े ही समय में मल छूटने लगेगा, अंगुलि अलग कर उसे निकाल देवे। फिर अंगुलि घुमावे ऐसे बार २ घुमाते रहना और मल फेंकते रहना। जब मल निकलना बंद हो जावे तो मल शुद्धि समझ लेना चाहिये। इस प्रकार क्रिया करने से जीर्ण मल विकार जो कई दिनों से भीतर पड़ा हो वह भी निकल जावेगा और मस्सा आदि रोग तथा मस्तक नेत्र कर्ण उदर कण्ठ आदि के अनेकों रोगों की शुद्धि होगी। तथा धातुओं की प्रसन्नता होगी। ऐसे इसके अनेक लाभ हैं। इस गणेश क्रिया के पश्चात् जल्दी खाने का भी भय नहीं है। चाहे जब भोजन मिले। इति बस्तिकर्म।

॥ नेतिकर्म तथा गुण ॥

नासिका के छिद्र के प्रमाण से जिसमें सहज जा सके सूत्रों की नेति बनावे। आधे भाग को बल लगावे और आधे भाग को खुला रखे। बल वाले भाग पर मोम चढ़ा कर उसे नाक के छिद्र में प्रवेश करके मुख की तरफ निकाले। जब मोम वाला भाग पूरा मुख में आ जावे, तब दोनों हाथों से दोनों सिरों को पकड़ पचास साठ बार मंथन करे। इसे नेति कर्म कहते हैं। गुरु से सीखने से जल्दी सिद्ध होकर सरल अभ्यास हो जाता है।

यह नेति क्रिया नाक कान नेत्र मस्तक और इनकी सन्धियों को शुद्ध करती है। और भी अनेक गुण हैं

॥ अथ धौतिकर्म ॥

पन्द्रह हाथ सुलायम कपड़ा लेकर उसे मुख के द्वारा पेट में पहुंचा कर नौलिकर्म से उसे घुमा कर वापस मुख से निकाल देने को धौति क्रिया कहते हैं। गुरु के द्वारा सीखने से जल्दी सिद्ध होती है और सरलता से हो जाती है। प्रथम अभ्यास में धौति को दूध में भिगो कर काम में लावें। बाद जल में भिगो कर करें। अभ्यास दृढ़ हो जाने पर सूखी धौति भी पेट में जा सकती है।

॥ धौति के गुण ॥

धौति कर्म के अनेकों गुण हैं और अनेकों सिद्धियां हैं।

कास श्वास प्लीह कुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्म प्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः॥

भावार्थ—कास श्वास प्लीहा तथा कुष्ठ एवं बीस प्रकार के कफ रोग धौति कर्म के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।

यदि दूध में भिगो कर धौति पेट में पहुंचाई हो तब तो जल्दी भोजन का भी कुछ आग्रह नहीं है। चाहे जब कभी भोजन हो। दुग्ध धौति हानि नहीं पहुंचा सकेगी।

हमारा तो अनुमान यह है कि जिसका श्लेष्मा (कफ) मय शरीर हो उसी को पानी की गीली धौति, बाद में कुछ नहीं खाने से हानि पहुंचाती है। पित्तमय पतले शरीर वाले को जल्दी नहीं खाने से भी हानि नहीं कर सकती।

धौति तो एक रत्नवस्तु है। योगी लोग इससे अनेकों प्रकार के लाभ उठाते हैं। धौति क्षुधा को शान्त करती

है। शरीर में चेतना लाकर बल प्रदान करती है और सुस्ती को भगाती है। यह हमारा स्वानुभव है।

॥ ब्रह्मरन्ध्रे चन्द्रामृतम् ॥

(वैद्यके लालारसेति नाम)

सहस्राधार से जो अमृत टपकता है उसे चन्द्रामृत कहते हैं, उसकी प्रसिद्धि लाला रस से भी है। इस लाला रस के विषय में जो डाक्टर वैद्य आदि का निर्णय है, उससे हमारा स्वानुभव कुछ भिन्न ही है। इसलिये हम वैद्य डाक्टरों के निर्णय पर ध्यान नहीं देते हुये यहाँ हमारे स्वानुभवों को लिखते हैं। जिसको प्रत्येक मनुष्य प्रयोग करके स्वयं अनुभव कर सकता है।

लाला रस भोजन के साथ पेट में पहुंचा हुआ भोजन को पेट में स्थिर करता है। जो भोजन, बिना लाला रस के पेट में पहुंचा हो वह भोजन शीघ्र पचता है। यदि केवल लालारस पेट में पहुंच रहा हो तो वह पेट की जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, अजीर्ण अन्न को पचाता है। भूख उत्पन्न करता है। भोजन को पचाता है। इस विषय में यदि किसी को इस योगी के वचन पर विश्वास न हो तो अनुभव करके देखें।

एक पाव दूध को थोड़ा २ मुख में रखें और उसको मुख में बहुत समय तक घोटा करें और पेट में पहुंचाते रहें। एक पाव दूध एक या पौन घण्टे में इस प्रकार पूरा पेट में पहुंचा देवें और अनुभव करें कि कैसा पाचन करता है। तथा एक पाव दूध को जिसमें मुख जिह्वा का स्पर्श न

हो इस प्रकार ऊपर से कण्ठ के द्वारा फौरन ही पेट में पहुंचा देवें। और दोनों प्रकार के दूध को अलग २ प्रयोग में लेकर समझें कि फौरन पहुंचाया दूध कितने समय में पचता है और मुख में घोट कर पहुंचाया दूध कितने समय में पचता है। इस पर से प्रत्येक भोजन व खाई हुई वस्तु का अनुमान हो जावेगा।

इस योगी ने अपने स्वानुभव से यह सिद्ध कर रखा है कि किसी भी वस्तु के साथ गया हुआ लाला रस भूख भगा कर पेट भरता है, और पेट में गया हुआ केवल लाला रस भूख लगाता है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

चाहे तुम पान को भी मुख में खूब घोट कर बहुत देर से पेट में पहुंचावोगे तो तुम्हारी दो तीन घण्टे तक भूख भग सकती है। चाहे यदि तुम्हें भूख लगी है और कुछ समय के लिये भूख भगाना है तो धौति का कपड़ा पन्द्रह हाथ मुख में घोट कर पेट में पहुँचा कर निकाल लो फौरन भूख भग जावेगी।

आशय यह है कि चाहे किसी भी वस्तु के साथ पेट में पहुंचा हुआ चन्द्रामृत पेट भरता व भूख भगाता है। तथा केवल पहुंचा हुआ चन्द्रामृत जठराग्नि प्रदीप्त कर अन्न पचाता है, भूख लगाता है।

॥ दीर्घायु ॥

आयुरारोग्यमाप्नोति स्थिरे चन्द्रामृते कृते।

भावार्थ—किसी भी प्रकार चन्द्रामृत को पेट में नहीं जानें देने से आयु बढती है शरीर नीरोग रहता है और जहां

तक चन्द्रामृत का पेट में जाना बन्द है उतने समय तक भूख प्यास नहीं लग सकती है। तथा चन्द्रामृत के पेट में पहुंचते ही फौरन भूख प्यास आ घेरती है।

इसको रोकने के अनेकों साधन हैं। चन्द्रामृत खेचरी मुद्रा से भी रुकता है। तथा शीर्षासन (विपरीत करणी) से भी रुकता है। सर्वाङ्गासन तथा जालंधर बन्ध से भी रुकता है। परन्तु अधिक समय तक शीर्षासन सर्वाङ्गासन जालंधर त्राटक आदि नहीं रोक सकते।

इसको बहुत समय तक रोकने के लिये तो प्राणायाम प्रत्याहारादि क्रम से सिद्ध समाधि ही काम कर सकती है।

सुना जाता है कि बहुत से समाधिस्थ योगी पहाड़ों में हजारों वर्षों से समाधि में मग्न हैं। उनके लाला रस पेट में नहीं जाने से भूख प्यास का क्लेश नहीं होता, और शरीर का वजन भी नहीं घटता। जब समाधि खुले और चन्द्रामृत पेट में जावे तब फौरन ही उन्हें भूख प्यास सतावेगी।

इस प्रकार योगी लोग समाधि में लाखों वर्ष बैठे रहते हैं, और चन्द्रामृत के रुकने से भूख प्यास नहीं सताती। सुना है काश्मीर की तरफ भगवान् रामचन्द्र के समय के महात्मा निकले थे।

इस प्रकार चन्द्रामृत (लालारस) के अनेक प्रयोग हैं। जो हमने अपने स्वानुभवों द्वारा ठीक तरह समझ रखे हैं, और समझा करके दूसरों को भी अनुभव करा सकते हैं।

॥ अथ कुंजरी क्रिया ॥

दौसौ तोला पानी पीकर उसे नौलि के द्वारा घुमा कर

पीछा वापस मुख के ही द्वारा बाहर फेंक देने को कुंजरी क्रिया कहते हैं।

कुंजरी क्रिया के करने से कफ की शुद्धि, धातुओं की प्रसन्नता, जठराग्नि की प्रदीप्ति, निद्रा तन्द्रा आलस्य का नाश हो जाता है तथा और भी अनेक प्रकार के गुण हैं।

॥ दुग्ध कुंजरी ॥

(स्वानुभवे) जिस प्रकार जल पीकर वापस मुख से फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार दूध भी पीकर फेंकने को दुग्ध कुंजरी कहते हैं। इसके करने से अनेक लाभ हैं। यह क्षुधा को शान्त करती है। वीर्य की रक्षा करती है तथा धातुओं की प्रसन्नता करती है और भी अनेक गुण हैं।

दुग्ध कुंजरी करने वाले का दूध व्यर्थ नहीं जाता बल्कि शरीर में बहुत लाभ पहुँचाता है।

यदि हमारे कहने के अनुसार कोई दुग्ध कुंजरी करे तो उसे अन्न खाने की भी आवश्यकता नहीं। तथा शरीर में बल पूरा बना रहेगा। मैदा चर्बी आदि नहीं बढ़ सकेंगे। धातुओं की प्रसन्नता रहेगी। संसार के सब काम भी ठीक प्रकार होते रहेंगे। गृहस्थाश्रम के किसी भी कार्य में कुछ भी बाधा नहीं होगी। अर्थात् शरीर सर्व प्रकार बलवान व कार्यक्षम बना रहेगा।

जिसको केवल दुग्ध कुंजरी पर ही रहना है और ठीक प्रकार अपना जीवन भी चलाना है तो इस प्रकार कुंजरी करे--

एक सेर दूध सुबह नौ बजे पी लेवे और उसे बीस या पच्चीस मिनट पेट में रोक रखें। पश्चात् पूरे दूध को मुख से बाहर फेंक देवे। बाद मध्याह्न में दो बजे एक सेर दूध पीकर पन्द्रह मिनट पेट में रख कर वापस मुख से निकाल देवें। बाद में शाम को सात बजे एक सेर दूध पीवे और बीस मिनट के लगभग पेट में स्थिर करके वापस मुख से निकाल देवे। इस प्रकार दिन रात में केवल तीन बार में कुल तीन सेर दूध की कुँजरी करे तो शरीर स्वस्थ रहे और मेदा चर्बी आदि स्थूल विकार नहीं बढ सकते और शरीर में बल (सामर्थ्य) ठीक रहते हुये सांसारिक सर्व कार्य क्षमता के साथ कर सकते हैं। अन्न खाने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इसको हम समक्ष में पूरी जानकारी करा कर ठीक प्रकार समझा सकते हैं।

यदि किसी का शरीर स्थूल (मोटा) हो और जठराग्नि अधिक शक्तिवाली हो तो दिन रात में चार बार भी कुँजरी कर सकता है। अर्थात् अधिक बार करने में भी कोई हानि नहीं है।

॥ अथ त्राटक योग ॥

कोई भी एक वस्तु पर नेत्र की दृष्टि जमा कर देखने को त्राटक योग कहते हैं। पद्मासन से बैठ कर साधारण दृष्टि से देखने से बहुत देर तक देखने की शक्ति आती है। जहां तक आंख से पानी नहीं आवे तब तक देखते रहना पानी आने पर फोरन देखना बंद कर देना चाहिये।

इस प्रकार ठीक प्रातःकाल प्रतिदिन करने से आँखों में ज्योति तथा शरीर में स्फूर्ति आती है। निद्रा, तन्द्रा, आलस्य

का नाश होकर मन की चंचलता नष्ट हो जाती है तथा नासिका कान मस्तक नेत्र आदि स्थानों के मल की शुद्धि होती है। इसका नाम बाह्य त्राटक है। आभ्यन्तर त्राटक मोक्ष समाधि आदि में काम करता है। शुभम्।

इसके अतिरिक्त मल शुद्धि आदि कार्यों के लिये अनेक योग क्रिया हैं। विषय बढ जाने के भय से उन्हें लिखना नहीं चाहते। यहाँ पर कुछ मुख्य २ क्रिया तथा आसन प्राणायाम भी केवल नाम और उनके गुण मात्र से ही लिखेंगे। उनकी पूरी जानकारी किसी भी योगाश्रम से करके ठीक प्रकार समझ सकते हो।

॥ खेचरी क्रिया ॥

यह सहस्रार से टपकते अमृत को रोकती है। और दीर्घ जीवन प्रदान करती है।

॥ बज्रोली क्रिया ॥

यह क्रिया मनुष्य को ऊर्ध्वरेता बना कर ब्रह्मचर्य को स्थिर करके जीवन को लाभ देती तथा मस्तिष्क में स्मरण शक्ति को बढाती है।

॥ शंखप्रक्षालन क्रिया ॥

मुख के द्वारा पानी पीकर गुदा से निकाल देने को शंखप्रक्षालन क्रिया कहते हैं।

॥ गुण ॥

शंख प्रक्षालन क्रिया पेट और गुदा की शुद्धि करती है। धातुओं को मजबूत बनाती है। निद्रा, तन्द्रा, आलस्य

को भगाती है। शरीर में चेतनता लाकर स्फूर्ति प्रदान करती है। स्मरण शक्ति को बढ़ाती है। इस प्रकार अनेक गुण हैं। शुभम्।

॥ सूचना ॥

ऐहलौकिक योग क्रिया को हम थोड़े में ही लिखेंगे। केवल नाम व गुण ही निर्देश करेंगे। विशेष जानकारी किसी भी योगाश्रम से की जा सकती है। कारण हमारा मुख्य मार्ग पारलौकिक क्रिया का है इसलिये हम पारलौकिक क्रिया को विस्तार से लिखेंगे। जो जीव ब्रह्म की एकता करता है और जन्म मरण से मुक्त करता है। जिसके लिये हम संसार के सुखों को त्याग कर योगी बने हैं। उस परम तत्त्व पारलौकिक योग को प्रधानतया लिखना है। वास्ते हम यहाँ आसन प्राणायाम आदि सूक्ष्म से ही लिखेंगे। इनकी जानकारी योगाश्रमों से कर लेनी चाहिये।

॥ आसनम् ॥

साधारणतः अनेकों आसन हैं। परन्तु संसारी गृहस्थी व्यवसायी मनुष्यों को समय बहुत कम रहता है। वास्ते प्रत्येक मनुष्य अपने गृहस्थाश्रम व्यवसाय के कार्य भी कर सके और कुछ समय निकाल कर स्वास्थ्य रक्षा के लिये आसन प्राणायाम आदि भी कर सके एतदर्थ यहाँ हम मुख्य मुख्य आवश्यक आसनों को लिखेंगे। बैठने के लिये भी अनेकों आसन है। परन्तु उनमें से चुन कर जो गृहस्थियों के लिये हितप्रद हैं वह ही लिखते हैं।

स्वस्तिकासन से प्रत्येक मनुष्य में बहुत देर तक बैठने की शक्ति रहती है। परन्तु यह केवल बैठक के लिये ही

ठीक है। इसमें और कोई विशेष गुण लाभ नहीं पाया जाता। अतः वात पित्त कफ तीनों को समान रखने वाला और अनेकों गुणों से युक्त पद्मासन ही करना चाहिये।

॥ पद्मासनम् ॥

वामोरूपरि दक्षांघ्रिं विन्यसेत्तस्य चोपरि।
दक्षोरौ वामपादं च संस्थाप्यांजलि संपुटम्॥
स्वांके निधाय नासाग्रं पश्येन्निश्चल मानसः।
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वव्याधि विनाशनम्॥

भावार्थ—वाम ऊरु के ऊपर दक्षिण पाद रख कर उसके ऊपर दक्षिण ऊरू पर वाम पाद को स्थापन करे और दोनों हाथों को संपुट करके अपने अंक में धर कर नासिका के अग्रभाग पर निश्चल मन से दृष्टि जमावे। यह सर्व प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला पद्मासन होता है।

पद्मासन के अनेक गुण हैं, अनेक लाभ हैं। और योग सिद्धि का प्रधान कारण है। यह हमारा स्वानुभव है। अभ्यास करने से बहुत समय तक लग सकता है।

एक घण्टे में यह सिद्ध माना जाता है। और तीन घण्टे का अभ्यास हो जाने पर आसन की पूर्ण सिद्धि मानी जाती है।

॥ पश्चिमतानमासनम् ॥

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ।
दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा॥

जानूपरि न्यस्त ललाटदेशो
वसेदिदं पश्चिमतान माहुः ॥

भावार्थ---दोनों पादों को दण्ड के समान पृथ्वी पर लम्बे कर के दोनों हाथों की आंकुचित तर्जनी से पैरों के अंगूठों को पकड़ कर मस्तक को घुटनों के बीच स्थिर करने को पश्चिमतान आसन कहा है।

॥ गुण ॥

इति पश्चिमतानमासनाग्र्यं
पवनं पश्चिमवाहिनं करोति।
उदरं जठरानलस्य कुर्या-
दुदरे कार्श्यमरोगतां च पुंसाम् ॥

भावार्थ---सब आसनों में अग्र्य (मुख्य) यह पश्चिमतान आसन प्राणवायु को पश्चिम वाहिनी याने सुषुम्ना की तरफ ढकेलता है। पेट जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और भूख लगाता है, पेट की मोटी दुम को दबाता है अर्थात् पेट को कृश करके सुन्दर बनाता है। पुरुषों को नीरोग करता है। नाड़ियों में दूषित वायु को हरण करता है और भी अनेकों लाभ प्रदान करता है। इसको सिद्धि सात मिनट में और पूर्ण सिद्धि इक्कीस मिनिट में होती है। शुभम्।

॥ शीर्षासन (विपरीत करणी) ॥

शीर्षासन चन्द्रकलामृत को रोकता है। ब्रह्मचर्य को स्थिर करता है। उर्ध्वरेता बनाता है। जठराग्नि को प्रदीप्त

कर भूख लगाता है। श्वास-कास आदि रोगों को दूर करता है। मस्तक के बाल सफेद नहीं होने देता। आयु बढाता है। ऐसे अनेक गुण हैं। स्मरणशक्ति को तीव्र बनाता है। इसको सिद्धि का समय एक घण्टा तथा पूर्ण सिद्धि तीन घण्टे को मानी जाती है। जिनके नेत्र कमजोर हों तथा मस्तिष्क कमजोर हो उनको शीर्षासन नहीं करना चाहिये।

॥ सर्वाङ्गासन ॥

यह आसन वायु को हरण करता है। अमृत को रोकता है। शरीर को नीरोग बनाता है। मस्तक के बाल काले रखता है। पाचन करता है तथा भूख लगाता है। ऐसे अनेक गुण हैं।

सर्वाङ्गासन विशेष कर स्त्रियों को अवश्य करना चाहिये। यह स्त्रियों के गर्भाशय का शोधन करता है तथा गर्भाशय के समस्त दोषों को हरण करके सन्तानोत्पत्ति का लाभ प्रदान करता है और मासिक धर्म की शुद्धि करता है। ऐसे अनेक गुग हैं। इसकी सिद्धि एक घण्टा और पूर्ण सिद्धि का समय तीन घण्टा है।

॥ मत्स्यासनम् ॥

मत्स्यासन वायु को हरण करता है, शान्ति प्रदान करता है श्रम हरण करता है। अन्न पचाता है। मल साफ लाता है। उदर को कृश करता है। और भी अनेक रोगों का नाश करता है। इसकी सिद्धि एक घण्टा तथा पूर्ण सिद्धि का समय तीन घण्टा है।

॥ इति आसन प्रकरणम् ॥

॥ अथ प्राणायाम प्रकरणम् ॥

प्राणायाम अनेक हैं, और सब आरोग्य तथा लाभप्रद हैं। परन्तु उनमें भी कुछ २ प्राणायाम अपनी विशेषता रखते हैं। उनको हम यहां लिखते हैं।

मलभित्सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भ्रामरी प्लाविनी चैव ह्येते गुण विशेषदाः॥

भावार्थ---मलशोधक प्राणायाम सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतली, भ्रामरी, प्लाविनी प्राणायाम ये विशेष लाभ प्रदान करने वाले हैं। मलशोधक प्राणायाम शरीर के मल को पवित्र करता है। सूर्यभेदन विशेष कर वात को हरण करता है। वास्ते ग्रीष्म और वर्षाकाल में इसका प्रयोग अधिक होता है। उज्जायी में कफ हरण करने की विशेषता है, वास्ते इसको हेमन्तऋतु में विशेष प्रयोग करते हैं। शीतली विशेषतः पित्त हरण करता है, वास्ते इसका प्रयोग ग्रीष्मऋतु में अधिक होता है। भ्रामरी में मन को चिन्ताओं से रहित कर सन्तोष देने की विशेषता है। प्रसन्नता उत्पन्न करता है। अतएव इसे एकान्त स्थान में बैठ कर करना उचित है। प्लाविनी प्राणायाम जल में नहीं डुबाता। अतः इसका अभ्यास जलाशय द्वारा करना उचित है।

वैसे तो यह सब प्राणायाम सब ऋतुओं में भी हो सकते हैं परन्तु ऊपर लिखी ऋतुओं में इनका विशेष महत्त्व है।

यह सब प्राणायाम गुरुमुख से ही सीख कर गुरु के संमुख ही सिद्ध करना चाहिये। नहीं तो खतरा होना सम्भव है।

॥ अथ मल शुद्धि प्राणायामः ॥
॥ स्वनिर्माणम् ॥

सूर्येण वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ।
मात्तणं कुम्भकं कृत्वा चन्द्रेण रचयेत्पुनः ॥
चन्द्रेण वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ।
मात्तणं कुम्भकं कृत्वा सूर्येण रेचयेत्पुनः ॥
एवं लोम विलोमेन कुर्यादेकादशद्वयम् ।
त्रिसंध्यं साधयेन्नित्यं द्विमासि मलशुद्धिदम् ॥

भावार्थ—सूर्य अर्थात् पिंगला नाड़ी से धीरे २ वायु खींच कर पेट में पहुंचावे। और जब पूर्ण वायु खिच जावे तब क्षणमात्र भी कुम्भक न करते हुये शीघ्र उसे धीरे २ चन्द्रनाड़ी इड़ा से रेचन याने बाहर निकाल देवे। जब पूर्ण वायु बाहर निकल जावे तो फौरन ही चन्द्र इड़ा नाड़ी से धीरे २ वायु को खींच कर पेट में भरे और जब पूरी वायु खिच जावे तो उसे क्षणमात्र भी नहीं रोकते हुये सूर्य नाड़ी पिंगला से धीरे २ बाहर निकाल देवे। यह एक प्राणायाम हुआ, इस प्रकार लोम विलोम करने से बाईस प्राणायाम प्रातः, बाईस प्राणायाम मध्याह्न में और बाईस प्राणायाम रात्रि में इस प्रकार त्रिकाल में कुल ६६ छासठ प्राणायाम नित्य नियम से दो मास तक प्रतिदिन करने से ऐहलौकिक योगक्रिया के योग्य मल की शुद्धि हो जाती है। तथा आसन प्राणायाम करने में बहुत सहायता मिल जाती है। शरीर फुर्तीला हो जाता है। तन्द्रा आलस्य भी भग जाते हैं। ऐसे अनेक लाभ होते हैं।

॥ अथ सूर्यभेदन प्राणायामः ॥

आसने सुखदे योगी वद्ध्वा चैवासनं ततः ।
दत्तनाड्या समाकृष्य बहिःस्थं पवनं शनैः ॥
आकेशा दानखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत् ।
ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत्पवनं शनैः ॥

भावार्थ—योगी सुखदायी आसन पर पद्मासन से बैठकर दक्षिण (पिंगला) नाड़ी से वायु को धीरे २ खींचकर पूरक प्राणायाम करके नखाग्र से लेकर केश पर्यन्त सारे शरीर में वायु रुक जावे तबतक कुम्भक करे पश्चात् सव्य (इडा) नाड़ी से वायु को धीरे २ बाहर छोड़ दे । यह सूर्यभेदन प्राणायाम कहलाता है ।

सूर्यभेदन मस्तक को शुद्ध करता है । अस्सी प्रकार के वात दोषों को हरता है । पेट के जन्तु (कृमि) को नष्ट करता है । इसके और भी अनेक गुण हैं ।

॥ अथोज्जायिनमाह ॥

मुख संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः ।
यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम् ॥
पूर्ववत्कुम्भयेत् प्राणं रेचयेदिडया ततः ।
श्लेष्म दोषहरं कण्ठे देहानल विवर्धनम् ॥

भावार्थ—मुख को दबा करके इडा और पिंगला नाड़ी से धीरे धीरे इस प्रकार वायु को भीतर खींचे कि जिससे वायु कण्ठ से हृदय पर्यन्त शब्द (गर्जन) करती हुई लगे ।

पश्चात् सूर्यभेदन के समान कुम्भक करके इडा से वायु को बाहर धीरे २ निकाल देवे। यह उज्जायी प्राणायाम कफ के दोषों को हरता है। जठराग्नि को बढ़ाता है और दीपन करके भूख लगाता है। शरीर की सर्दी को भगाता है।

॥ अथ सीत्कारी प्राणायामः ॥

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ॥

भावार्थ–दोनों ओष्ठों के मध्यम में जिह्वा को लगाकर सीत्कार करते हुये मुख से वायु को भीतर खींचे पश्चात् दोनों नासापुटों से वायु को बाहर निकाल देवे।

यह सीत्कारी प्राणायाम शरीर को रूप लावण्य से युक्त कामदेव के समान बनाता है। शोभायमान करता है। तथा क्षुधा तृषा निद्रा तन्द्रा और आलस्य को दूर करता है। कफ तथा तामस को भी हरता है। और भी अनेक गुण हैं।

॥ अथ शीतली प्राणायामः ॥

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥

भावार्थ–दोनों ओष्ठों को बाहर निकाल जिह्वा को परनाली के समान बनाकर सीत्कार शब्द के साथ जिह्वा से वायु को धीरे २ खींचकर वायु को घूंट के साथ उतार कर अधिक न रोकते हुये नासा के दोनों पुटों से धीरे२ वायु को बाहर निकाल देवे। यह शीतली प्राणायाम गुल्म प्लीहा आदि रोग

तथा ज्वर पित्त क्षुधा तृषाएवं सर्प आदि का विष इन सबको नष्ट करता है। इसको करने वाले का शरीर स्वाभाविक शीतल रहता है।

॥ अथ भस्त्रिका प्राणायामः ॥

कुण्डली बोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम्।
ब्रह्मनाडीमुखे संस्थकफाद्यर्गलनाशनम् ॥

भावार्थ—भस्त्रिका प्राणायाम वात पित्त कफ (त्रिदोष) को हरता है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। नाड़ियों को शुद्ध करता है। और वायु को सुषुम्ना में ढकेलता है और भी अनेक गुण हैं।

॥ अथ भ्रामरी प्राणायामः ॥

वेगाद् घोषं पूरकं भृङ्गनादं
भृङ्गीनादं रेचकं मन्द मन्दम् ।
योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते
जाता काचिदानन्द लीला ॥

भावार्थ—मुख बन्द करके वेग से दोनों नासा पुटों से भ्रमर के तुल्य शब्द करते हुये वायु को खींचकर पेट में भरे। पश्चात् भ्रमरी के समान शब्द करते हुये धीरे २ मन्द २ वायु को बाहर दोनों नासापुटों से निकाल देवे, इसको भ्रामरी प्राणायाम कहते हैं।

वायु निकालने में तीन मिनट का अभ्यास होने पर प्राणायाम की सिद्धि होती है, और नौ मिनिट का अभ्यास होने पर पूर्ण सिद्धि हो जाती है।

स्वर्गाश्रम में एक बंगाली स्वामीजी ने हमसे कहा था कि हमारे गुरु महाराज भ्रामरी का श्वास सूर्यास्त से निकालते तो सूर्योदय तक समाप्त होता, इतना उनका प्राण पर संयम था। यह उनका कहना भी ठीक प्रतीत होता है, कारण भ्रामरी प्राणायाम बहिरंग समाधि का प्रधान मार्ग है। इसमें कुम्भक वर्ज्य है। जो श्वास मन्द २ शब्द के साथ निकलता है, उसी को बुद्धिमान लोग कुम्भक मानते हैं।

॥ भ्रामरी के गुण ॥

भ्रामरी प्राणायाम बहिरंग समाधि का प्रधान मार्ग है। तथा चंचल हरिणरूपी चित्त को शब्द के आनन्द में डुबाकर चंचलता रहित कर नाद के लक्ष्य में स्थापन करता है। चिन्ताओं को दूर करता है। रोगों को भगाता है। वात पित्त कफ का शोधन करता है। आयु को बढ़ाता है। ऐसे इसमें अनेक गुण हैं।

॥ मूर्छा प्राणायामः ॥

पूरकान्ते गाढतरं बध्द्वा जालंधरं शनैः।
रेचयेन्मूर्च्छनाख्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ॥

मूर्च्छा प्राणायाम मन को गाफिल करता है। प्राण की गति को सूक्ष्म करता है। शरीर के रोगों को हरता है।

॥ अथ प्लाविनी प्राणायामः ॥

अन्तः प्रवर्तितोदारमारुतापूरितोदरः।
पयस्यगाधेऽपि सुखात्प्लवते पद्मपत्रवत् ॥

भावार्थ-अधिक मात्रा में पेट में वायु भरने वाला यह प्लावनी प्राणायाम पानी में नहीं डुबाता, पानी पर ही तैरता रहता है।

॥ अथ अपानवायुप्राणायामः ॥

अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्राणङ्कण्ठादधोनयेत् ।
योगी जरा विमुक्तः सन् षोडशाब्दवयो भवेत् ॥

भावार्थ-अपान वायु को ऊपर खींचकर प्राण वायु को कण्ठ में स्थापन कर जो टिकता है। वह सर्वव्याधि से मुक्त होता है। उसकी आयु बढ़ती है। मृत्यु को जीतता है। और भी अनेक गुण हैं। इसकी सिद्धि आठ मिनट की और पूर्ण सिद्धि २४ मिनट की कही है।

॥ अथ सर्पमुद्राप्राणायामः ॥

जिह्वा को पीछी उलटा कर मुख से जो वायु खींचा जाता है। वह सर्प मुद्रा प्राणायाम कहा जाता है। यह सर्व व्याधियों को हरण करने वाला है तथा भूख प्यास को हरता है। और शरीर में सर्प के समान बल शक्ति पैदा कर सकता है ऐसे इसके अनेक लाभ हैं।

प्राणायाम अनेक हैं। हमने यहाँ थोड़े से ही लिखे हैं। प्राणायाम का प्रधान तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार प्राण की गति को सूक्ष्म बना देना। वास्ते पातञ्जल योग दर्शन में स्पष्ट कहा है —

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः

भावार्थ-महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि किसी भी प्रकार

से श्वास प्रश्वास की गति को सूक्ष्म बना देना, यही प्राणायाम का मुख्य ध्येय है। इति प्राणायाम प्रकरणम्।

अब हम ऐहलौकिक योगक्रिया को इतनी ही लिख कर समाप्त करेंगे कारण हम योगी हैं। हमें पारलौकिक योग से अधिक प्रीति है। जो जीव ब्रह्म की एकता करके मुक्त करता है। उसी तत्त्व के लिए हम गृहस्थाश्रम के समस्त सांसारिक वैभव सुखों को ठुकरा कर त्याग कर योगी बने हैं। वास्ते मोक्ष हमारा परम लक्ष्य है। अतः पारलौकिक योग को हमें विस्तार से ठीक समझा कर लिखना है जो मोक्ष का परम धन है। वास्ते ऐहलौकिक योग को समाप्त करते हैं। ऐहलौकिक योग की अनेकों क्रियायें हैं। इनकी जानकारी आप लोगों को किसी भी योगाश्रम से अच्छी प्रकार से हो सकती है। योगाश्रम से ही ठीक समझ सकते हो, सीख सकते हो और ऐहलौकिक योग का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकते हो॥ शुभम्॥

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

॥ इति योगतत्त्वे ऐहलौकिको नाम प्रथमो भागः॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥ ॐ कार गुरवे नमः ॥

॥ अथ योगतत्त्वे पारलौकिको नाम द्वितीयो भागः ॥

अचिन्त्यरूपो भगवान्निरञ्जनो
विश्वम्भरो ज्ञानमयश्चिदात्मा ।
विशोधितो येन हृदि क्षणं नो
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम् ॥

(योगी शुकः)

प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह अपने को जन्म मरण से मुक्त करे और सत्य परम धन परमात्मा के तत्त्व में शांति प्राप्त करे ।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में कहा है—

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेती त्येतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोप गुह्यार्ह पदं पदे पदे ॥१॥

भावार्थ—नेति नेति कहने वाले भी उसको विष्णु का परम पद कहते हैं। जो आत्मा के अतिरिक्त किसी से मित्रता नहीं करते और क्षण २ में उस परमात्मा से हृदय में मिलते हैं और मुक्त हैं ।

यही भूत शुद्धि प्रकरण में कहा है—

गंगायमुनयोर्मध्ये बालरण्डां तपस्विनीम् ।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

भावार्थ—गंगा यमुना अर्थात् इडा पिंगला नाड़ी जहाँ मूलाधार में जाकर समाप्त हुई है और वहाँ से सुषुम्ना नाड़ी प्रारम्भ हुई है इनके बीच आद्य शक्ति परा प्रकृति सर्पिणी के आकार वाली जो सुषुम्ना के ब्रह्मद्वार को रोक कर सोई हुई है। उस तपस्विनी को जो महापुरुष अपने योग बल से जाग्रत करके प्राण को ब्रह्मनाड़ी के अन्तर्गत करते हैं। वही अव्यक्त अविनाशी विष्णु का परम पद है। जो अनेकों पूर्व जन्मों के पुण्य के प्रताप से प्राप्त होता है।

॥ मुक्ति निर्णयः ॥

॥ विवेकचूडामणौ ॥

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् ।
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ॥
आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्ति ।
न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥१॥

भावार्थ—अनेक शास्त्रों को पढ़ते रहो सुनते रहो। अनेकों देवताओं का यजन पूजन उपासना करते रहो। अनेकों दान धर्म तीर्थ यज्ञादिक क्रिया करते रहो। और मुख से यथेष्ट देवताओं का भजन करते रहो नेत्रों से दर्शन करते रहो। परन्तु अद्वैत आत्म दर्शन के विना मुक्ति मिलना दुर्लभ है, चाहे ब्रह्मा के सैंकड़ों जन्म भी क्यों न बीत जांय मुक्ति मिलना कठिन है बार २ जन्म लेते रहो और मरते रहो।

॥ मुक्ति विचार ॥

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता।
तस्माद्वैदिकधर्म मार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् ॥
आत्मानात्म विवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति।
मुक्तिर्नो शत कोटि जन्म सुकृतैःपुण्यै र्विना लभ्यते॥

भावार्थ–जीवों को प्रथम तो मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है। उससे भी पुरुषत्व और उससे भी ब्राह्मण कुल में जन्म मिलना कठिन है। उसमें भी वैदिक धर्म का अनुगामी तथा विद्वत्ता का होना कठिन है यह सब कुछ होने पर भी आत्मा और अनात्मा का विवेक सम्यक् अनुभव तथा ब्रह्मात्म भाव स्थिति और मुक्ति ये तो करोड़ों जन्मों के किये शुभकर्मों के परिपाक के विना प्राप्त हो ही नहीं सकते ॥ शुभम् ॥

॥ जीव स्वयं ही आत्मघाती है ॥

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं।
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यः स्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः।
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात् ॥

भावार्थ–किसी प्रकार इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर और उसमें भी जिसमें श्रुति के सिद्धान्त का ज्ञान होना है ऐसा पुरुषत्व प्राप्त कर जो मूढ़ बुद्धि अपने आत्मा की मुक्ति के लिये प्रयत्न नहीं करता, वह निश्चय ही आत्मघाती है। वह असत् में आस्था रखने के कारण अपने को नष्ट करता है।

इतः कोन्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।
दुर्लभं मानुष देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥

भावार्थ–दुर्लभ मनुष्य देह और उसमें भी पुरुषत्व पाकर जो अपने स्वार्थ साधन में भी प्रमाद कर बैठता है । उससे अधिक मूढ दूसरा कौन होगा ।

॥ ज्ञानोपलब्धि का उपाय ॥

अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वान्
सन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृहः सन् ।
सन्तं महान्तं समुपेत्य देशिकम्
तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा ॥

भावार्थ-बुद्धिमान मनुष्य बाहर के सम्पूर्ण भोगों की इच्छा का त्याग करके सन्तशिरोमणि गुरुदेव की शरण में जा कर उनके उपदेश के अनुसार मुक्ति के लिये प्रयत्न करे ।

उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ ।
योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शन निष्ठया ॥

भावार्थ—निरन्तर आत्मा के दर्शन में स्थित रहता हुआ योगारूढ हो कर संसार सागर में डूबे हुये अपने आत्मा का आप ही उद्धार करे ।

॥ योगसाधन ही प्रधान है ॥

(योग रसायने)

क्रियाजालान्यनेकानि, प्रभवन्ति न मुक्तये ।
योगमेवाभ्यसेन्नित्यं बुधो मोक्षाय केवलम् ॥

भावार्थ—अनेक प्रकार के जप-तप तीर्थ दान भजन पूजन यज्ञादि जो स्थूल क्रियाओं के समूह हैं, वह सब मुक्ति के लिये साक्षात् समर्थ नहीं हो सकते। अर्थात् इन सब से शीघ्र मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। बुद्धिमान मनुष्य को संसार बन्धन से मुक्ति के लिये केवल योग का ही अभ्यास करना चाहिये।

तत्त्वज्ञानेन कैवल्यं ज्ञानं योगमयं तथा।
विना योगेन यज्ज्ञानं नैव तन्मोक्षकारणम्॥

भावार्थ—तत्वज्ञान से कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है। और वह ज्ञान, योगरूप ही है। और जो योग के विना शुष्क ज्ञान है वह मुक्ति का कारण नहीं हो सकता है।

शुष्कशास्त्रविवादेषु नैवायुः क्षपयेद् बुधः।
नहि दीपकवार्तायामन्धकारो विनश्यति॥

भावार्थ—शास्त्रों के शुष्क विवादों में बुद्धिमान पुरुष को सर्व आयु व्यतीत नहीं करनी चाहिये। जैसे दीपक की वार्ता करने से अन्धकार का नाश नहीं हो सकता। वैसे ही केवल शास्त्रों की वार्ता करनें से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

॥ साधन ही मुक्ति का प्रधान कारण है ॥

समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं।
श्रोत्रादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि॥
त एव मुक्ता भवपाशबंधै।
र्नान्ये तु पारोक्ष्य कथाभिधायिनः॥

भावार्थ—श्रोत्रादि इन्द्रियाँ मन अहंकार इनको बाहर से खींच कर आत्मा में लीन करके जो समाधि में लीन होते हैं। वे ही संसार बन्धन से मुक्त होते हैं और जो केवल परोक्ष ब्रह्मज्ञान की बातें बनाते रहते हैं और लम्बे २ हाथों को उठा कर केवल जीव ब्रह्म का प्रतिपादन करते रहते हैं। वह कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं।

यही बात योगी वसिष्ठ ने श्री रामचन्द्रजी को उपदेश में कही है।

> सकल्पमात्रकलनैव जगत्समग्रम् ।
> सकल्पमात्रकलनैव मनो विलासः ॥
> संकल्पमात्रमतिमुत्सृज निर्विकल्प ।
> माश्रित्य निश्चयमवाप्नुहि राम शान्तिम् ॥

भावार्थ—एक समय भगवान श्री रामचन्द्रजी अपने गुरु वसिष्ठजी के पास जाकर प्रणाम कर बोले—गुरु महाराज! बाल्यावस्था से अभीतक चित्त को शान्ति नहीं मिली, वन-वास सीताहरण रावण युद्ध पश्चात् भी अयोध्यावासी मनुष्य के वचन से सीता का त्याग। इस प्रकार का जीवन रहा। अतएव हे गुरुदेव! मन को शान्ति प्राप्ति हो ऐसा उपाय कहिये।

रामजी के वचनों को सुनकर योगी वसिष्ठजी ने कहा—हे राम तुमको शान्ति चाहिये तो सुनो—यह सारा जगत् संकल्पमात्र की रचना है। और जो कुछ भी भोग वस्तु गृह बाग धन सम्पत्ति नाना प्रकार के पदार्थ स्त्री सुखादि जो कुछ भी हैं। सब मन के ही संकल्प से होते हैं। अतएव हे राम!

तुम को शान्ति चाहिये तो मन के समस्त संकल्पों को त्याग करके निर्विकल्पता को प्राप्त होजावो तो हे राम ! तुमको निश्चय ही शान्ति प्राप्त हो सकती है अन्यथा इस संकल्प की रचना वाले जगत् में शान्ति कहाँ है ।

॥ मन और प्राण ही मुक्ति के कारण हैं ॥

(हठयोगप्रदीपे)

ज्ञानं कुतो मनसि संभवतीह तावत् ।
प्राणोऽपि जीवति मनो म्रियते न यावत् ॥
प्राणो मनो द्वयमिदं विलयं नयेद् यो ।
मोक्षं स गच्छति नरो न कथञ्चिदन्यः ॥

भावार्थ—तुम अपने को ज्ञानी कैसे समझते हो जहाँ तक तुम्हारा मन अनेक संकल्प कर रहा है । और तुम्हारा प्राण भी जीवित है । याने सुषुम्ना में नहीं पहुँचा है । यदि ज्ञानी कहलाना चाहते हो तो प्राण और मन दोनों को लय करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त करो । प्राण और मन दोनों को लय करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है । इसके अतिरिक्त मुक्ति के कोई मार्ग (उपाय) नहीं ।

॥ सत्य तो यह है ॥

यावन्नैव प्रविशति चरन् मारुतो मध्यमार्गे ।
यावद् बिन्दु र्न भवति दृढः प्राणवातःप्रबन्धात् ॥
यावत् ध्याने सहजसदृशं जायते नैव तत्त्वम् ।
तावज् ज्ञानं वदति तदिदं दम्भमिथ्याप्रलापः ॥

भावार्थ–जहाँ तक प्राणवायु मध्य मार्ग याने सुषुम्ना में नहीं जाने लगा, और जहाँ तक प्राणायाम के प्राणवायु प्रबन्ध (सिद्धि) से बिन्दु की स्थिरता नहीं हुई, जहाँ तक ध्यानावस्था में मन के संकल्प नहीं गये, तहाँ तक तुम्हारा ज्ञानी कहलाना केवल मिथ्या दम्भ मात्र है।

॥ अथ योगी प्रशंसा ॥

योगाभ्यासे प्रवृत्तस्य योगिनः श्रद्धयान्विताः।
परिचर्यां प्रकुर्वन्ति शिष्या वा धनिनश्चये॥
ते तस्य पुण्ययोगेन क्षीणपापकदम्बकाः।
अनायासेन गच्छन्ति ब्रह्मणः सदनं परम्॥

भावार्थ–योगाभ्यास में प्रवृत योगी पुरुष की जो शिष्य अथवा धनिक भक्त लोग अन्न पान स्थान वस्त्रादिकों से श्रद्धा पूर्वक सेवा करते रहते हैं। वे भी उस योगी के पुण्य के भागी होने से सर्व पापों से रहित होकर अनायास ही ब्रह्म लोक को प्राप्त कर लेते हैं।

॥ ब्रह्मवैवर्तपुराणे ॥

कृतार्थौ पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत्।
जायते योगवान् यत्र दत्तमक्षय्यतां व्रजेत्॥
दृष्टः सम्भाषितः स्पृष्टः पुंप्रकृत्यो र्विवेकवान्।
भवकोटिशतापातं पुनाति वृजिनं नृणाम्॥

भावार्थ–योगी के माता पिता कृतार्थ हैं उसका कुल भी धन्य है और वह देश भी जहाँ योगवान् जन्म लेता

है योगी को दिया हुआ दान अक्षय होता है। पुरुष और प्रकृति के विवेकी योगी जन के दर्शन सम्भाषण और स्पर्श करने से मनुष्यों के कोटि २ जन्मों के पाप नष्ट होजाते हैं और आत्मा पवित्र हो जाता है।

गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च।
ब्रह्मचारिसहस्रेण योगाभ्यासी विशिष्यते॥

भावार्थ--सहस्र गृहस्थो शत वानप्रस्थो और सहस्रों ब्रह्मचारियों से एक योगाभ्यासी अधिक (श्रेष्ठ) होता है।

॥ राजयोगे वामदेवं प्रति शिववाक्यम् ॥

राजयोगस्य माहात्म्यं को विजानाति तत्त्वतः।
तज्ज्ञानी वसते यत्र स देशः पुण्यभाजनम्॥
दर्शनादर्चनादस्य त्रिसप्त कुल संयुताः।
अज्ञा मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः।
अन्तर्योग बहिर्योगं यो जानाति विशेषतः।
त्वया मयाप्यसौ वन्द्यः शेषैर्वन्द्यस्तु किं पुनः॥

भावार्थ–राजयोग के यथार्थ माहात्म्य को कौन जान सकता है। राजयोग का ज्ञानी जहाँ निवास करता है वह देश पवित्र व पुण्यमय है। योगी के दर्शन पूजन से इक्कीस कुल सहित मूर्ख लोग भी मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। योग में तत्पर तो क्यों न मुक्त होंगे। जो अन्तर्योग और बहिर्योग को विशेष कर जानता है वह योगी तुम्हारे और मेरे भी वन्दना करने योग्य है। तो अन्य मनुष्यों की क्या गणना है।

॥ कूर्म पुराणे (महायोग महिमा) ॥

एक कालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा ।
ये युञ्जंते महायोगं विज्ञेयास्ते महेश्वराः ॥

भावार्थ–कूर्म पुराण में लिखा है कि एक समय में द्विकाल त्रिकाल में अथवा नित्य जो महायोग का अभ्यास करते हैं । उनको साक्षात् शंकरजो जानना चाहिये ।

॥ मार्कण्डेय पुराणे ॥

योगिनश्च सदा श्राद्धे, भोजनीयाः प्रयत्नतः ॥
योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान् पूजयेत सदा ॥१॥
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी त्वग्राशनो यदि ॥
यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ॥२॥
पितृगाथास्तथैवात्र गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥
या गीता पितृभिः पूर्वमैलस्यासन् महीपतेः ॥३॥
कदा नः संततावग्र्यः कस्याचिद् भविता सुतः ॥
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति ॥४॥

भावार्थ–विद्वान् पुरुष प्रयत्न करके श्राद्ध में योगिजनों को भोजन करावे । कारण पितर केवल योग में ही स्थित हैं, अतः योगियों को सदा ही भोजन कराना उचित है । सहस्रों ब्राह्मणों के स्थान में यदि एक योगी को भोजन कराया जाय तो वह जल में नौका के समान सबका उद्धार करता है । ब्रह्मवादी लोग इस विषय में एक गाथा कहते हैं, पितरों ने इस फल के उद्देश से यह गाथा कही, कि कब हमारे वंश में

ऐसा सर्वश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा जो योगियों के भोजन से बचे हुए अन्न से हमको पृथ्वी पर पिण्ड दान करे।

इन शास्त्र प्रमाणों व प्रत्यक्ष प्रमाणों से योग सर्वोत्तम है ।।शुभम्।।

।। अथ प्राणायाम प्रकरणम् ।।

आलोच्य योगशास्त्राणि स्वस्यानुभवतस्तथा।
सारभूतं प्रवक्ष्यामि विधानं योगसाधने ।।१।।

भावार्थ—पातंजल योगदर्शन, शिव संहिता, याज्ञवल्क्य-संहिता, गोरक्षपद्धति, हठयोगप्रदीपिका, पातंजल योगप्रदीप, घेरण्डसंहिता आदि अनेक योग ग्रन्थों को मथन करके तथा अपने अनुभव के अनुसार योग साधन करने की सारभूत विधि को संक्षेप से निरूपण करते हैं। शुभम्।

प्राणायामं तथा प्राणं वक्ष्यामि मोक्षकाम्यया।
प्राणायामे भूमिका पंच प्राणस्य भूमिका त्रयम् ।।

भावार्थ—प्राणायाम व प्राण की भूमिका मोक्ष के लिये कहते हैं प्राणायाम की पांच भूमिका हैं और प्राण की तीन भूमिका है। अर्थात् प्राणायाम ही पांच नामों से भिन्न हो जाता है।

प्रथम अभ्यास में प्राणायाम कहा जाता है। उसीका अभ्यास दृढ़ होने से प्रत्याहार बन जाता है। ऐसे जैसे २ अभ्यास बढता जाता है, वैसे ही क्रम से धारणा, ध्यान, समाधि के रूप में कहा जाता है। इस प्रकार प्राणायाम पांच नामों से होता है।

इसी प्रकार जब कुण्डलिनी चैतन्य होकर प्राण सुषुम्ना

में प्रवेश करता है तब प्राण की मूर्च्छावस्था को भूमिका की समाधि मानी जाती है। प्राणायाम तथा प्रत्याहार मूर्च्छा-समाधि धारणा ध्यान और समाधि ये मृत समाधि है।

बहिरंगद्वयम्, अन्तरंगत्रयम्।

भावार्थ–प्राणायाम प्रत्याहार यह दो बहिरंग समाधि और धारणा ध्यान समाधि यह तीन अन्तरंग समाधि है।

मृता मूर्च्छा तथा बद्धा प्राणस्य भूमिकात्रयम्।

भावार्थ–मूर्च्छा मृता बद्धा यह प्राण की अवस्था की तीन भूमिका है।

प्राणायाम के विषय में योग चिन्तामणि में कहा है–

प्राणायामोऽभ्यास क्रमेण वर्धमानः प्रत्याहार-ध्यान-धारणा-समाधिशब्दैरुच्यते।

भावार्थ–यह प्राणायाम ही अभ्यास के क्रम से बढ़ता हुआ प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि शब्दों से कहा जाता है।

॥ तदुक्तं स्कंदपुराणे ॥

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः।
प्रत्याहार द्विषट्केन धारणा परिकीर्तिता॥
भवेदीश्वर सङ्गत्यध्यानं द्वादशधारणम्।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते॥

भावार्थ–द्वादश प्राणायामों के समय का प्रत्याहार और द्वादश प्रत्याहार के समय की धारणा और जीव ब्रह्म की एकता के निमित्त द्वादश धारणा के समय का ध्यान होता

है। और द्वादश ध्यान के समय की एक समाधि कही जाती है। और यह हमारा स्वानुभव भी है।

स्वानुभव तथा तात्पर्य—लगभग पौन मिनट प्राण ब्रह्मरन्ध्र में टिककर वापस आजावे वह उत्तम प्राणायाम की सिद्धि है, तथा दश मिनट प्राण मस्तक में ठहर कर आजावे तो प्रत्याहार की सिद्धि है। तथा दो घंटे प्राण मस्तक में ठहर कर वापस होश आजावे तो धारणा की सिद्धि कही है। और चौबीस घंटे में प्राण को चेतनता आवे तो ध्यान की सिद्धि कही है। तथा १२ बारह दिन प्राण मस्तक में ठहर कर आवे तो समाधि की सिद्धि कही है। इसके आगे महा समाधि होती है। ध्यान पर्यन्त की समाधि, शब्दों से खुल सकती है। आगे महा समाधि का खुलना असम्भव है। वह तो बर्फ मख्खन उड़द की रोटी आदि साधनों के प्रयोग से खुल सकती है।

प्राणायाम और प्रत्याहार यह दो बहिरंग मूर्च्छा समाधि है। तथा धारणा ध्यान समाधि यह तीन अन्तरंग समाधि है। प्राण को तीसरी भूमिका बद्ध क्रिया को फिर आगे कहेंगे।

॥ प्राणायाम की सिद्धि ॥

जब कुण्डलिनी चैतन्य होकर प्राण ब्रह्मरंध्र में चढ़ते हैं और वापस सुषुम्ना से आते हैं उसकी उद्घात संज्ञा है।

यही बात हठयोग प्रदीप में कही है—

नीचो द्वादशमात्रस्तु सकृदुद्घात ईरितः।
मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशति मात्रकः॥

सुख्यस्तु यत्त्रिरुद्घातः षट् त्रिंशन्मात्र उच्यते ।
प्रस्वेद कम्पनोत्थान जनकश्च यथाक्रमात् ॥
आनन्दो जायते चात्र निद्राधूमस्तथैव च ।
रोमांचोध्वनि संवित्तिरंगमोटनपूर्वकम् ॥
श्रमेणस्वेदजल्पाद्यं संविन्मूर्च्छां जयेद् यदा ।
तदोत्तम इति प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः ॥

श्लोकार्थ तथा स्वानुभव--जब प्राण सुषुम्ना में रहता है तब आनन्द निद्रा और चित का आन्दोलन रोमांच तथा ध्वनि का ज्ञान अंगमोटन और कम्पन होते हैं।

जब प्राण अपान से पीडित हो ऊपर को जाकर वापस लौटता है और उसमें मूर्च्छादि लक्षण होते हैं वह उद्घात है।

जो प्राणायाम एक बार उत्थान करता है याने एक उद्घात करता है वह स्वेद युक्त कनिष्ठ प्राणायाम है। जिसमें दो बार उद्घात (उत्थान) हो वह कम्पन युक्त मध्यम प्राणायाम है। तथा स्वेद कम्प से रहित तीन बार उद्घात (उत्थान) का उत्तम प्राणायाम है। और इसी प्राणायाम में प्राण लगभग पौन मिनट मस्तक में ठहर कर आता है और इसीमें आनन्द का तथा महाध्वनि का ज्ञान होता है।

कुण्डलिनी चैतन्य होकर जब प्राण सुषुम्ना में रहते हैं तब उस उत्तम प्राणायाम में योगी को जो आनन्द आता है उस आनन्द को वर्णन नहीं किया जा सकता। इस विषय में बंगाल के स्वामी निगमानन्दजी महाराज का कहना है कि जो स्त्री सुख का आनन्द है उससे करोड़ गुणा आनन्द

प्राण के सुषुम्ना में रहने के समय आता है। यह उनका अनुमान है।

परन्तु मेरे विचार से तो यह आनन्द तुच्छ है। जब प्राण सुषुम्ना में रहता है, उस प्राणायाम के आनन्द का तो पार नहीं है। ऐसा महान् आनन्द का रस प्राप्त होता है। शुभम्।

॥ प्राणस्य फलम् ॥

मूर्छितो हरते व्याधीन् मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां धत्ते प्राणवायुश्च पार्वति ॥

भावार्थ–मूर्छित प्राण याने कुण्डलिनी चैतन्य होकर प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश करना। यह मुर्छित प्राण बहिरंग समाधि है। इसके सिद्ध होने से योगी सम्पूर्ण व्याधियों से मुक्त हो जाते हैं, तथा अनेक जन्म जन्मान्तर के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं और शुद्धात्मा हो जाता है। प्राणायाम तथा प्रत्याहार की जो स्थिति है वह मूर्छित बहिरंग समाधि समस्त व्याधियों और पापों का नाश करती है।

इसके आगे प्राण की मृत संज्ञा है, धारणा ध्यान और समाधि यह मृत प्राण है। जब प्राण की मृत संज्ञा हो जाती है, और जितने समय तक प्राण मृत रहता है वहाँ तक अमर है उसे मृत्यु नहीं खा सकती। तात्पर्य यह है कि मृत प्राण वाला मर नहीं सकता है। प्रत्युत आयु बढ़ जाती है।

बद्ध प्राण का एक घड़ी का अभ्यास ही मोक्ष प्रदान कर देता है। बद्ध प्राण के विषय को आगे कहेंगे। शुभम्।

अब प्राणायाम के विषय में शास्त्र तथा स्वानुभव को कहते हैं---

॥ प्राणायाम ॥

प्राणायाम सिद्ध करने के लिये नाड़ियों का शोधन होना जरूरी है। यह शास्त्रप्रमाण तथा स्वानुभव से भी सिद्ध है।

मलाकलासु नाड़ीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनी भावो मोक्षसिद्धि कथं भवेत् ॥

भावार्थ--जहाँ तक शरीर की नाड़ियाँ मल से दूषित हैं वहां तक मारुत याने प्राण मध्यगा याने सुषुम्ना में नहीं जाता, और जहां तक प्राण सुषुम्ना में नहीं जाता वहां तक उन्मनी अवस्था भी नहीं हो सकती और जहां तक उन्मनी अवस्था नहीं आती वहां तक मोक्ष की सिद्धि भी कैसे हो सकती है।

॥ उन्मनी अवस्था क्या है ॥

मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते।
यो मनः सुस्थिराभावः सैवावस्था मनोन्मनी ॥

भावार्थ--जब प्राण वायु सुषुम्ना में प्रवेश करता है तब मन की स्थिरता हो जाती है, और जो मन की स्थिरता है। उसी को उन्मनी अवस्था कहते हैं।

इससे तो यह सिद्ध हुआ कि मन स्थिरता के लिये जो-कुछ भी उपाय हैं सब व्यर्थ हैं। जहां तक प्राण सुषुम्ना में नहीं जावे और मनोन्मनी अवस्था न आजावे तब तक मन

की स्थिरता के लिये मनुष्यों के अन्य प्रयत्न करना वृथा है। इसमें हमारा स्वानुभव भी है। मन की स्थिरता कहो चाहे उसे उन्मनी अवस्था कहो एक ही बात है। वास्ते प्रत्येक मनुष्य को प्राणायाम सिद्ध करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। तथा प्राणायाम की सिद्धि नाड़ी शोधन के बिना नहीं हो सकती, वास्ते नाड़ी शोधन करना नितान्त आवश्यक है

॥ नाड़ी शोधन विधि ॥

युक्ताहार विहारेण नाड़ीशुद्धि भविष्यति।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिध्यति॥

भावार्थ—यथा योग्य जैसा चाहिये वैसे यथार्थ आहार विहार से नाड़ियों की शुद्धि हो जाती है। पश्चात् प्राणायाम करने से अनायास ही विना परिश्रम के प्राणायाम सिद्ध हो जाता है।

अब प्राणायाम में नाड़ी शोधन के लिये स्वानुभव का शुद्ध आहार लिखते हैं। नाड़ी शोधन से लेकर समाधि पर्यन्त के शुद्ध पथ्य भोजन का विवरण दे रहे हैं, जो योगियों को हितकारी है।

॥ पथ्य भोजन ॥

आरम्भे दुग्धमाहारं मध्ये दुग्धघृते स्मृते।
सुषुम्नोष्णत्वशान्ते तु दुग्धप्रभृति भोजनम्॥
चतुर्थ्यां भूमिकायां तु रसाम्बु केवलं भवेत्॥

भावार्थ–आदौ शब्द से नाड़ी शोधन के आरम्भ से प्राणायाम की सिद्धि पर्यन्त केवल गाय के दूध का ही सेवन करे और कुछ भीनहीं लेवे। मध्य शब्द से याने प्राण के सुषुम्ना में प्रवेश होते ही नित्य दूध और घृत को लेकर अभ्यास करे और कुछ नहीं लेवे अन्त शब्द से जब सिद्ध प्राणायामों की चौबीस हजार संख्या हो जावे और सुषुम्ना की गरमी शान्त हो जावे, तब से दुग्ध प्रभृति शब्द से दूध, घृत, पालख, परवल, द्राक्षा, मोसमी, राजगरा, साबूदाना, केला, दूधी, इसबगोल को आहार में प्रयोग करते हुए भी अभ्यास किया जा सकता है।

इसबगोल पवित्र और योगियों की वैज्ञानिक महौषधि है–

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च सर्वलाभ प्रदायनी।
नानारोगहरा दिव्या बल बुद्धि प्रवर्द्धिनी॥

भावार्थ–इसबगोल औषधि गृहस्थी तथा योगी सब को लाभ देने वाली है। तथा अनेकों रोगों का नाश करती है। और दिव्य है तथा बल और बुद्धि को बढ़ाने वाली है।

॥ फलम् ॥

मन्दाग्नि संदीपन पाचनादि–
संधापिकानंदकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च
महौषधिरीसबर्गनिर्मला च॥

भावार्थ–इसबगोल औषधि मंदाग्नि को हटाती है।

जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। तथा पाचन शक्ति को बढ़ाती है। आदि शब्द से मल को शुद्ध करती है। शौच क्रिया साफ लाती है। यह इन कामों में विधात्री है। चित्त को आनन्द देने वाली तथा वात के समस्त वायुरोगों का नाश करने वाली और अंगूठे से मस्तक पर्यन्त वायु का शोधन करने वाली है। इसके अनेक गुण हैं। यह महौषधि ईसब निर्मला विकार रहित है। इसके अतिरिक्त कब्ज, पेचिश, मरोड़, वात, पित्त, कफ के अनेक रोगों पर अनुपान भेद से बहुत ही लाभप्रद है। शुभम्।

इसके आगे जब चौथी भूमिका याने बीस घंटे से ऊपर प्राण के मस्तक में ठहरने का समय आवे तब केवल दूध में जल मिला कर लेवे और रस शब्द से दूध, द्राक्षारस, मोस-मीरस लेवे। शास्त्रों में रस संज्ञा घृत को भी है, परन्तु हमारे अनुभव से घृत हानिप्रद होता है। यदि घृत लेना भी हो तो आधा तोला से अधिक नहीं ले सकते। शुभम्

आसने च महायोगे निराहारो भवेत सदा।
आदावनशनं चैव पश्चाद् योगं समाचरेत्॥

भावार्थ—महायोग याने पाँच दिन के बाद अधिक दिन समाधि में बैठना हो तो पाँच दिन पहले से आहार मात्र को त्याग देवे और बाद समाधि के आसन पर बैठे। शुभम्।

॥ अथ नाड़ी शोधनम्॥

अब हम अपने अनुभव के अनुसार नाड़ी शोधन में केवल दुग्ध के आहार की मात्रा कहते हैं।

सुबह नौ बजे तीन छटाँक याने १५ तोला दूध पीवे। बाद दुपहरी में १२ बजे तीन छटांक (पन्द्रह तोला) दूध पीवे बाद तीन बजे पन्द्रह तोला दूध फिर पीवे। बाद ६ बजे १५ तोला दूध पीवे। बाद रात्रि में कुछ भी नहीं लेवे, इस प्रकार आहार करते हुये, साथ में नियमों का भी पालन करना आवश्यक हैं:-

वर्जयेदशनं रूक्षं स्नानं शीताम्बुना तथा।
पद्भ्यां पर्यटनं चादि स्त्रियं चापि विशेषतः॥

भावार्थ-योगी को नाड़ी शोधन के समय से लेकर जीवन पर्यन्त रूक्ष अर्थात् चिकनाहट से रहित भोजन तथा ठंडे जल से स्नान, तथा पैरों से मार्ग चलना, स्त्री संग तथा चांदि शब्द से परिश्रम तथा बोलना अग्नि के पास बैठना, रात्रि भोजन तथा सूर्यकी रश्मि में खड़ा रहना, व्यायाम करना तथा सिद्ध प्राणायाम के अतिरिक्त अन्य आसनों तथा प्राणायामादि योग क्रियाओं का करना तथा मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना विशेष जन समुदाय में बैठना तथा मन में अनेक प्रकार के कार्यों के करने की चंचलता उत्पन्न करना तथा प्रवृत्ति कर्मों को करने की वाञ्च्छा रखना आदि सब बातों को त्याग देना चाहिये। इनकी आजीवन इच्छा न करे। नहीं तो योग भ्रष्ट होना सम्भव हैं।

॥ पथ्यापथ्य ॥

एतद्धि योगिनां पथ्यं नापथ्यं तु कदाचन।
पथ्याभावे भवेद्योगी नानारोग समन्वितः॥

भावार्थ–जो हमने ऊपर लिखे हैं, इन आहार विहार का ही पालन करना चाहिये। योगी को अपथ्य सेवन कभी भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि पथ्य के पालन न करने से योगी के शरीर में नाना प्रकार के ज्वरादि रोगों की उत्पत्ति हो कर वह योगी योगभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार हमारे बताये, अनुसार नाड़ी शोधन २६ दिन में स्थूल देह वाले का भी हो जाता है। और जिसका पतला शरीर हो, उसका तो बहुत शीघ्र ही हो जाता है।

॥ नाडीशोधने चिन्ह ॥

यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तथा चिन्हानि बाह्यतः।
कायस्य कृशता कान्तिस्तदा जायेत निश्चितम् ॥

भावार्थ–जब नाड़ी की शुद्धि हो जाती तब शरीर में कृशता (दुर्बलता) तथा मुख पर कान्ति (तेज) आजाती है। यह चिह्न बाहर होते हैं।

॥ कृशता ही प्रधान है ॥

सर्वेषु योगमार्गेषु शरीरं कृशतां व्रजेत्।
भयं तत्र न कुर्वीत युक्त्या रक्षेत् कलेवरम् ॥

भावार्थ–हठयोग हो अथवा राजयोग हो, योग के सब मार्गों में अच्छी तरह अभ्यास करने से शरीर अवश्य कृश (दुर्बल) हो जाता है। अतः इस विषय में साधक पुरुष को भय नहीं करना चाहिये। किन्तु युक्ति से शरीर की रक्षा करनी चाहिये। इति नाड़ी शुद्धि प्रकरणम् ॥

॥ अथ प्राणायामः ॥

यदि शरीरपतला हो तो नाड़ी शोधन के आरम्भ से पांचवें दिन ही प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिये ।

प्रायशो योगयुक्तीनां सन्निवेशोऽत्र विद्यते ।
तथापि गुरुवक्त्रेण विज्ञेयास्ता विचक्षणैः ॥

भावार्थ–यद्यपि प्रायः करके योग की सर्व युक्तियाँ हमने इसमें लिखी हैं । तथापि बुद्धिमान साधक पुरुषों को योग क्रिया योगाभ्यासी गुरु के मुख से ही सीखनी चाहिये ।

वास्ते जिस दिन से प्राणायाम प्रारम्भ करे उसी दिन से गुरु के पास ही रहे कारण न जाने किस समय कुण्डलिनी जागृत हो कर प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाय । इसका भरोसा नहीं रहता, कारण कुण्डलिनी के जागृत होने के समय खतरा रहता है । यदि अनुभवी गुरु पास में न हो तो या तो साधक को पागलपन आजावे, या मर जावे ऐसा शक रहता । वास्ते गुरु धैर्यपूर्वक संभाल लेते हैं ।

प्रारम्भ काल में ही खतरा रहता है । बाद अभ्यास के दृढ़ हो जाने से यह मदोन्मत्त हाथी रुपो प्राण वश में होकर सरल सुखदायक बन जाता है । फिर गुरु की आवश्यकता नहीं रहती है । फिर तो अभ्यास की हो आवश्यकता रहती है । वास्ते प्राणायाम के आरम्भ काल से ही गुरु की शरण में सदा चौबीसों घंटा रहना चाहिये और अभ्यास करना चाहिये ।

॥ अभ्यासविधि ॥

पांच हाथ लम्बा और पाँच हाथ चौड़ा मुलायम रूई का गदला बिछा कर उसके बीच में बैठ कर अभ्यास करे। साधक से दश हाथ दूरी तक जल, पत्थर शिला, अग्नि तथा खतरनाक चीजें नहीं रहना चाहिये। ऐसी जगह बन्द कमरे में बैठ कर अभ्यास करे।

॥ विधि ॥

प्राणायामं सूक्ष्मसूक्ष्मं सूक्ष्मातिसूक्ष्ममेव च।
शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥

भावार्थ—सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म प्राणायामों को शनैः २ (धीरे २) अस्सी बार तक करे। अस्सी प्राणायाम सूर्योदय के बाद करे तथा अस्सी प्राणायाम ग्यारह बजे करे। बाद अस्सी प्राणायाम दुपहरी में दो बजे करे। बाद अस्सी प्राणायाम पांच बजे करे। इस प्रकार कुल चौबीस घंटों के बीच ३२० प्राणायाम नित्य करे।

प्राणायामस्य गणना सहस्ररुद्रमेव च।
तदा योग्यं विजानीयात् कुंभकं शक्तिशोधने ॥

भावार्थ—प्राणायाम की ग्यारह हज़ार संख्या होती है तब तक तो कुंडलिनी चैतन्य होकर प्राणायाम सिद्ध हो जाता है यह तो मोटे स्थूल शरीर वाले की गणना है। परन्तु जो संस्कारी तीव्र मुमुक्षु और ज्ञानी तथा पतले शरीर वाले हैं उन को तो बहुत शीघ्र ही प्राणायाम सिद्ध हो जाता

है। प्राणायाम की सिद्धि होते ही कुंडलिनी का नासिका द्वारा सर्पों जैसा शब्द होता है। और प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है।

॥ सिद्ध प्राणायाम ॥

(स्वानुभव)

रेचकं कुंभकं त्यक्त्वा, पूरकचैव केवलम्।
प्राणायामस्य संसिद्धिः कथिता मुनिपुंगवैः॥

भावार्थ–रेचक याने वायु का छोड़ना, कुंभक याने वायु को रोकना जिसमें न हो। और पूरक याने वायु को नासिका से खींचते ही वायु फोरन सुषुम्ना में जाकर लय हो जावे वह श्रेष्ठ सिद्ध प्राणायाम मुनियों ने कहा है।

इस प्रकार प्राणायाम के सिद्ध होते ही चालू प्राणायामों को त्याग देवे, और सिद्ध प्राणायामों का ही अभ्यास करे।

कार्या अशीतिपर्यन्तं पूरकं सुसमाहितैः।
आहारं नियमं चैव परिवर्तनमाचरेत्॥

भावार्थ–कुंडलिनी के चैतन्य होते ही पहले के प्राणायामों को करना बन्द करके, केवल पूरक प्राणायामों का ही अस्सी संख्या तक अभ्यास करे। और उसी दिन से आहार तथा नियमों का भी परिवर्तन कर देवे।

॥ आहार नियम विधि ॥

(शास्त्र तथा स्वानुभव)

सुषुम्ना में प्राण के संचार करते ही उसी दिन से केवल

दूध, मक्खन, घृत ही लेवे, अन्य कुछ भी नहीं लेवे। सुषुम्ना बहुत गरम नाडी है। वह जागृत होते ही खाने की इच्छा करती है। यदि उसकी क्षुधा के अनुकूल दूध, घृत की ठंडक नहीं पहुंचती तो वह योगी के रक्त, मांस को खाजाती है। वास्ते वह जितना माँगे उतना ही नित्य देना चाहिये। सुषुम्ना के अनुकूल दूध, मक्खन, घृत आदि आहार मिलने से वह कुछ दिनों में शान्त हो जाती है, तब आहार स्वयमेव घट जाता है। और केवल कुंभक की सिद्धि हो जाती है।

अभ्यासकाले प्रथमे, कुर्यात् क्षीराज्यभोजनम्।
ततोऽभ्यासे दृढीभूते, न तादृङ् नियमग्रहः॥

भावार्थ—प्रथम अभ्यास के समय याने पूरक प्राणायामों के समय दूध और घृत का भोजन करे। बाद अभ्यास के दृढ होने याने केवल कुंभक के सिद्ध होने पर नियम का आग्रह नहीं।

॥ अथ प्राणायामादि दिन चर्या ॥

जब से कुंडलिनी चैतन्य होकर प्राण सुषुम्ना में संचार करने लगे उसी दिन से योगी की दिनचर्या (नित्य नियम) को कहते हैं।

प्रातः काल सूर्योदय के समय उठकर शौच क्रिया से निवृत्त हो बन्द कमरे में पाँच हाथ लम्बे पांच हाथ चौड़े रूई के गदले के बीच बैठकर लगभग नौ बजे प्राणायाम का अभ्यास शुरु करे। अस्सी संख्या समाप्त करके पश्चिमतान

करे। बाद में शवासन से विश्राम करे। बाद में कुछ समय मत्स्यासन करके स्नान करे।

अभ्यासं सकलं कुर्यादीश्वरार्पणमादृतः।
अभ्यासादुत्थितः स्नानं कुर्यादुष्णेन वारिणा॥

भावार्थ—प्राणायामों के महापुण्य को परमात्मा के अर्पण प्रेम से करके बाद में गरम जल से स्नान करे।

स्नानान्तर कुछ परमात्मचिन्तन, स्वाध्याय करके पुनः शास्त्रोक्त याने दूध, घृत को इच्छानुसार ग्रहण करके विश्रामकरे। बाद सूर्यास्त के पहले शौचादि क्रियाओं से शुद्ध हो कर रात्रि में साढे आठ बजे पुनः अस्सी संख्या प्राणायाम का अभ्यास शुरू करे। जब प्राणायाम समाप्त हो और क्षुधा या मुख में गरमी मालूम दे तो लगभग एक छटांक याने पाँच तोला मक्खन ग्रहण करे तथा दूध नहीं लेवे। यह सिद्ध प्राणायामों के अभ्यास के नित्यनियम कहे हैं। अन्य नियम पहले के समान जानना।

जब सिद्ध प्राणायामों की अस्सी संख्या का अभ्यास योगी करता है तब योगी के शरीर में बाह्य चिह्न भूमिकाओं की उन्नति से होते हैं। उनको मैं स्वानुभवों तथा शास्त्रों से लिखता हूं—

॥ प्राणायामे बाह्य चिह्नानि ॥

प्राणस्यारोहणे तत्र चतस्रो गतयः क्रमात्।
भवन्ति योगिनो देहे नित्यमभ्यासयोगतः॥

भावार्थ—उक्त रीति से नित्य अभ्यास करने से प्राण के

ऊपर मस्तक में चढ़ने के समय योगी के शरीर में चार प्रकार की प्राण की क्रम से गति अर्थात् चाल होती है ।

पिपीलिकासमा पूर्वं ततो दर्दुरसन्निभा ।
गतिः सर्पोपमा पश्चाद्धंसस्य तदनन्तरम्॥

भावार्थ—प्रथम अभ्यास काल में चींटी की चाल जैसी प्राण की गति होती है । फिर कुछ दिनों में मेंढक जैसी गति होती है। अर्थात् जैसे मेंढक कूद-कूद कर चलता है, ऐसे हाथ उठते हैं। और प्राण एक चक्र से दूसरे में और दूसरे से तीसरे चक्र में चढ़ता है। तिसके बाद सर्प की चाल के समान प्राण की गति होती है । जैसे सर्प लम्बा टेढ़ा होकर चलता है वैसे ही शरीर की आकृति हिलती है और प्राण सुषुम्ना में चढ़ता है। उस समय योगी का सर्वांग फड़कता है । पैर के अंगूठे से लेकर मस्तक पर्यन्त की नाड़ियाँ हिलती हैं। उसके बाद चौथी भूमिका में हंस के समान प्राण की गति होती है। अर्थात् जैसे हंस पक्षी पैर उठा-उठा कर चलता है, वैसे ही योगी का आसन उत्थान होकर तपकता है। उस समय योगी के पैर से लेकर सर्वांग का प्राण ऊपर चढ़ता है। यह प्राणायाम की चौथी भूमिका उत्थान की है यह शुद्ध प्राणायाम माना जाता है। और इसीसे पथ्य भोजन पूर्वक आगे अभ्यास बढ़ता है।

॥ सिद्ध प्राणायाम के लक्षण ॥

वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता,
नादस्फुटत्वं नयनेसु निर्मले ।
अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं
मले सुगन्धि हंठयोगलक्षणम् ॥

भावार्थ—शुद्ध प्राणायाम ठीक-ठीक होने से शरीर में कृशता (दुर्बलता) तथा मुख पर कान्ति प्रसन्नता और अनाहत नाद की ध्वनि दक्षिण कर्ण में शुरू होना तथा नेत्रों में निर्मलता और शरीर में रोगों का अभाव तथा धातु की स्थिरता तथा जठराग्नि की वृद्धि और मल में चन्दनादि जैसी सुगन्ध आदि चिन्ह हठयोग प्राणायाम से होते हैं। और प्राणायाम के समय योगी को महान् आनन्द होता है।

आनन्दानुभवस्तत्र जायते योगिनो महान्।
स एव तं विजानाति मया वक्तुं न शक्यते ॥
नैव तं विषयासक्ता विदु र्नो शास्त्र चिन्तकाः।
योगजं परमानन्दं योगिनोऽनुभवन्ति यम् ॥

भावार्थ—जब प्राण सुषुम्ना में जाता है, उस समय योगी को जो परम आनन्द का अनुभव होता है। उस आनन्द को वह योगी स्वयं ही जान सकता है। मैं उस आनन्द का कथन नहीं कर सकता हूँ। उस आनन्द को विषयासक्त पुरुष भी नहीं जान सकते, और केवल शुष्क शास्त्रों की बातें बनाने वाले और शास्त्र सुनने सुनाने वाले भी नहीं जान सकते। जो आनन्द योगी को सिद्ध (मूर्छित) प्राणायाम करते समय प्राप्त होता है वह अनुभवमात्र गम्य है।

॥ प्राणायामे विचारः ॥

प्राणस्य त्वखिलं कर्म मनोयुक्तं समभ्यसेत्।
मनसो विकलीभावे प्राणो न स्थिरतां व्रजेत् ॥

भावार्थ—प्राण के चढ़ाने की सब क्रिया मन की एकाग्रता

के साथ करनी चाहिये । क्योंकि मन के चंचल होने से प्राण की स्थिरता नहीं हो सकती, और केवल कुम्भक की सिद्धि भी नहीं हो सकती ।

वर्द्धमाने ततोऽभ्यासे प्राणस्त्यक्त्वा गमागमौ ।
ब्रह्मरन्ध्रे लयं याति मनश्चानु विलीयते ॥

भावार्थ–उक्त रीति से नित्य सिद्ध प्राणायामों का अस्सी संख्या सायं प्रातः अभ्यास करने से और शुद्ध आहार विहार से वायु नासिका द्वार से आना जाना छोड़ मस्तक में स्थिर होने लगता है और केवल कुंभक सिद्ध होजाता है । और फिर बाहर से वायु खींचने की आवश्यकता नहीं रहती ।

॥ केवल कुम्भकार्थः ॥

(हठयोग प्रदीपे)

यावत् केवल सिद्धिः स्यात् पूरकं तावदभ्यसेत् ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥
प्राणायामोऽयमित्युक्तः सर्वैः केवलकुंभकः ॥

भावार्थ–जहाँ तक केवल कुंभक सिद्ध न हो वहाँ तक पूरक प्राणायाम का अभ्यास करे । और केवल कुंभक के सिद्ध होने पर पूरक प्राणायाम के अभ्यास को छोड़ देवे । और केवल कुम्भक का ही अभ्यास करे । जिसमें प्राण को बाहर से खींचना भी नहीं पड़े और वापस छोड़ना भी नहीं पड़े, और आपसे आप प्राण सुखपूर्वक सुषुम्ना में सङ्कल्प मात्र से प्रवेश करने लग जावे, उसे केवल कुम्भक कहते हैं । और यहां से ही इडा पिंगला ह० कहिये सूर्य ठ० कहिये चन्द्रमा ऐसा सूर्य चन्द्रमा इडा पिंगला नाड़ी का हठयोग समाप्त होकर राजयोग में प्रवेश होता है ।

॥ प्राण की स्थिरता ॥

कुंभकाभ्यसतो नित्यं ध्यान योगाच्च मूर्धनि ।
स्थितिं सम्बर्धयेद् योगी, समाधिः स्याद् यथाचिरम् ॥

भावार्थ—केवल कुंभक के विशेष अभ्यास से और ब्रह्म रन्ध्र में ध्यान के बल से योगी पुरुष मस्तक में प्राण की स्थिरता को बढ़ावे जिससे समाधि की स्थिति चिरकाल की प्राप्त होवे । और केवल कुंभक के द्वारा प्रत्याहार में सिद्धि मिले ।

॥ केवल कुम्भक ॥

(पातञ्जलयोगदर्शने)

सूत्र—बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः ।

भावार्थ--केवल चुपचाप मन को एकाग्र करके बैठ जाना ही पातञ्जल योग का चौथा प्राणायाम जो राजयोग से सम्बन्ध रखता है । और हठयोग में केवल कुंभक नाम से प्रसिद्ध है ।

॥ स्वानुभवे ॥

उक्त रीति से केवल कुंभक का अभ्यास करते-करते जब प्राण वायु पांच मिनिट के लगभग मस्तक में स्थिर होने लगे तब आगे योगी को प्रत्याहार का अधिकार प्राप्त होता है ।

॥ अभ्यासे समयोक्तम् ॥

नातिशीते न चात्युष्णे नाति वर्षति तोयदे ।
अभ्यासं वर्धयेद् योगी नो चेद् रोगभयं ध्रुवम् ॥

भावार्थ–अतिशीतकाल में अति उष्णकाल में तथा अत्यन्त वर्षाकाल में नाड़ी शोधन आदि सिद्ध प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ न करे और चालू अभ्यास को भी आगे विशेष न बढ़ावे। कारण अति शीतादि काल में अभ्यास बढ़ाने से शरीर में रोग होने का भय रहता है।

इस प्रकार कहे अनुसार समय को त्याग हमारे कथनानुसार नित्य केवल कुंभक का अभ्यास करने से आगे प्रत्याहार में अधिकार प्राप्त होता है। प्राणायाम से लेकर समाधि पर्यन्त के साधनों में प्रत्याहार ही महान् कठिन साधन है। यह जबर जस्त पहाड़ है। प्रत्याहार को सिद्ध किया मानो बड़े भारी पहाड़ को उल्लंघन कर लिया। प्रत्याहार के सामने बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा ऋषि मुनि आदि सभी का पतन होता आया ऐसा सुनते हैं। और आगे तो पतन होना सम्भव ही है। यह ईश्वर रचित योग माया (प्रकृति) का जबर जस्त बन्धन है।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥

भावार्थ–बड़े-बड़े ज्ञानियों के चित्त को भी यह योगमाया प्रकृति बलात्कार पूर्वक खींच कर के मोह में डाल देती है। जब कभी इसका दाव लगे तभी संसार में गिरा देती है, तो साधारण मनुष्यों की क्या गणना है।

॥ इति प्राणायाम प्रकरणम् ॥

॥ अथ प्रत्याहारः ॥

(बहिरंग मूर्च्छितसमाधि)

अब प्रत्याहार को कहते हैं, कि केवल कुंभक का वायु दश मिनट मस्तक में स्थिर हो जावे उसे प्रत्याहार की सिद्धि का अभ्यास कहा जाता है, ऐसा हठयोग शास्त्र का वचन है। शुभम्। अब प्रत्याहार शब्द के अर्थ को और उसकी महिमा को कहते हैं।

॥ प्रत्याहार क्या है ॥

प्रत्याहारमथो वक्ष्ये यथोक्तं मुनिपुंगवैः।
साधनाद्यस्य योगीन्द्रो निर्विघ्नं सिद्धिमृच्छति ॥

भावार्थ — योग का अंग जो प्रत्याहार उसको पूर्व के मुनि लोगों के कथनानुसार वर्णन करते हैं। जिस प्रत्याहार के साधन करने से योगी पुरुष निर्विघ्न योग सिद्धि को प्राप्त होता है।

इन्द्रियाणि चरंतीह विषयेषु स्वभावतः।
यत्नादाहरणं तेषां प्रत्याहारो निगद्यते ॥

भावार्थ—श्रोत्रादिक इन्द्रियां शब्दादिक विषयों में जो स्वभाव से ही विचरती हैं। उनको यत्न से जो विषयों की तरफ से खींचकर निवृत्त करना है उसे प्रत्याहार कहते हैं।

पातंजल योग दर्शन में भी कहा है—

सूत्र—स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

भावार्थ—मन व इन्द्रियों को विषयों की तरफ से हटाकर अंतर्मुख करना ही प्रत्याहार है। शुभम्

॥ प्रत्याहार के विना योग निष्फल है ॥

इन्द्रियाण्यवशीकृत्य यस्तुयोगं समभ्यसेत् ।
भिन्नभाण्डाम्बुवत्तस्य योगः क्षरति संततम् ॥

भावार्थ--इन्द्रियों को न जीत करके जो पुरुष योग का अभ्यास करता है, उसका योग साधन फूटे हुये घड़े के जल के समान निरंतर क्षरता रहता है, अर्थात् कुछ हाथ नहीं आता ।

॥ प्रत्याहार का महत्त्व ॥

जितंतेन जगत्सर्वं येनेन्द्रियगणोजितः ।
इन्द्रियाणां वशे यस्मादेतद्विश्वमशेषतः ॥

भावार्थ--जिस पुरुष ने अपनी इन्द्रियां जीती है । उस पुरुष ने मानो सारा जगत् जीत लिया है । क्योंकि सम्पूर्ण जगत् इन्द्रियों के ही वशीभूत हो रहा है ।

योगी भर्तृहरिजी नें भी कहा है-

कान्ता कटाक्ष विशिखा नदहंतियस्य
चित्तंन निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥
कर्षंति भूरिविषयाश्च न लोभ पाशै
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं सधीरः ॥

भावार्थ--स्त्रियों के कटाक्ष रूपी बाण जिसके हृदय को नहीं वेधते । और क्रोध रूपी अग्नि जिसके चित्त को नहीं जला सकती । तथा जिनको विषय लोभ रूपी रस्सी

से नहीं बांध सकते याने इन्द्रियों का विषयों की तरफ आकर्षण नहीं होता। वह ऐसा धीर पुरुष त्रिलोकी को जीतता है।

॥ विषयासक्त पुरुष ॥

विषयेषु समासक्तो न योगं कर्तुमर्हति।
तस्माद्विषयसंत्यागो योगिनां परमो हितः॥

भावार्थ—विषयों में फंसा हुवा पुरुष योगाभ्यास को ठीक नहीं कर सकता है। वास्ते योगी लोगों को विषयों का परित्याग करना परम हितकारक है।

॥ महाविषय ॥

विषयेष्वपि सर्वेषु स्त्रीसंज्ञो विषमो मतः।
योगिनां परमो वैरी सिद्धिहा चित्तदूषकः॥

भावार्थ—सब विषयों में स्त्री नाम जो विषय है, सो ऋषि लोगों ने बड़ा दुर्जय माना है। क्योंकि वह मोक्ष योगियों का परम वैरी है, और योग सिद्धियों का नाश करने वाला है। और योगियों के चित्त को बिगाड़ने वाला है। कारण मोक्ष योग में केवल ब्रह्मचर्य ही प्रधान माना है।

यस्याः समस्तमेवेदं ससुरासुरमानवम्।
पदाक्रांतं जगज्जेतुं कस्तां शक्नोति योषितम्॥

भावार्थ—देवता-दानव-मनुष्यादि सर्वजगत जिसके वशीभूत हो रहा है, ऐसी स्त्री को सर्वथा कौन पुरुष जीत सकता है।

तस्माद्विशेषतः स्त्रीणां संगं योगी विवर्जयेत् ।
सिद्ध योगोपि संगेन पतेदत्र न संशयः ॥

भावार्थ—वास्ते योगाभ्यासी पुरुष को स्त्रियों का संग विशेष करके त्यागना चाहिय, क्योंकि योग सिद्धि को प्राप्त हुवा भी पुरुष कुसंग से भ्रष्ट हो जाता है । तो प्रथम साधक योगी की क्या गणना है ।

॥ प्रत्याहार में आने वाले विघ्न ॥

योगाभ्यासे प्रवृत्तस्य योगिनो विघ्नकारकाः ।
स्वयमेवोपातिष्ठंति विषया देवनोदिताः ॥

भावार्थ—प्रत्याहार में विघ्न करने के लिये योगाभ्यासी योगी के पास देवताओं करके भेजे जाने वाले विषय पदार्थ अपने आप स्वतः ही आकर प्राप्त होते हैं ।

मानः पूजा च विख्याति द्रव्य लाभश्च जायते ।
योषितां संगमश्चैव वांछितानां च संग्रहः ॥

भावार्थ—लोकों में मान, पूजा, यश, और धन की प्राप्ति स्त्रियों का समागम और वांछित पदार्थों का संग्रह, अपने आप ही होने लगता है ।

तत्रासक्तं भवेच्चित्तं प्रसभं योगिनो भृशम् ।
ततोऽभ्यासं परित्यज्य योगाद् भ्रष्टो भवेद्ध्रुवम् ॥

भावार्थ—उस मान पूजादिकों में योगी का चित्त बलात्कार से आसक्त हो जाता है, और फिर वह योगी धीरे धीरे अभ्यास को छोड़ करके योग से भ्रष्ट हो जाता है ॥ वास्ते

योगी को सर्व संग त्याग, एकान्त में रहते हुये केवल योग का ही अभ्यास करना चाहिये और अन्य इच्छा नहीं रखना चाहिये ॥

॥ मनुष्य शरीर दुर्लभ है ॥

शब्दादि विषयालोके सुलभाः सर्वयोनिषु ।
दुर्लभं मानुषं देहं मत्वाऽऽसक्तिं न कारयेत् ॥

भावार्थ—शब्द स्पर्शादि जो इन्द्रियों के विषय हैं, वो तो पशु-पक्षी आदिक सर्व योनियों में सुलभ हैं और मिल सकते हैं। परन्तु यह मनुष्य का शरीर जीव को मिलना बड़ा दुर्लभ है। ऐसा जानकर समझ करके इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति नहीं करनी चाहिये।

॥ तृष्णा ॥

घृतासेकाद्यथावन्हेर्ज्वाला भूयोऽभिवर्धते ।
विषयासेवनाज्जंतोस्तथा तृष्णाऽभिवर्धते ॥

भावार्थ—जैसे घृत की आहुति डालने से अग्नि की ज्वाला तेजी से बढ़ती जाती है। वैसे ही विषयों के सेवन करने से, जीव की तृष्णा रोजाना ज्यादा बढ़ती जाती है।

॥ ज्ञान ॥

तस्मादिन्द्रियवर्गस्य प्रत्याहारं प्रयत्नतः ।
कृत्वा धीरमना योगी भवेदभ्यासतत्परः ॥

भावार्थ—वास्ते धैर्ययुक्त मन वाले योगी को प्रयत्न से सर्व इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त करके निरंतर ही योगा-

भ्यास में तत्पर रहते हुये प्रत्यहार पर विजय करना योग्य है ।

॥ कारण ॥

जितेन्द्रियस्य चेतस्तु स्वतः शांतं प्रजायते ।
तेन सिद्धिर्हि योगस्य शीघ्रं भवति निश्चितम् ॥

भावार्थ–जितेन्द्रिय पुरुष का चित्त भी आप से आप शांत हो जाता है और चित्त के शान्त होने से शीघ्र ही योग की सिद्धि होती है ।

वास्ते प्रत्येक योगी ने यत्न पूर्वक इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त करके प्रत्याहार की सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ।

॥ प्रत्याहार सिध्यर्थें उपाय ः॥

अब हम प्रत्याहार की सिद्धि और विघ्नों की शान्ति के लिये उपाय लिखते हैं ।

प्रत्याहारस्य सिध्यर्थें तथाच विघ्न शांतये ।
चिंतनं हंसमंत्रस्य कृत्वा केवल कुंभके ॥
अभ्यासानंतरं कुर्याद्गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि ।
विघ्नास्तेन विनश्यंति तमांस्यर्कोदये यथा ॥

भावार्थ–प्रत्याहार की सिद्धि के लिये तथा प्रत्याहार में होने वाले विघ्नों की शांत के लिये हंस मंत्र का चिन्तन केवल कुम्भक के साथ करना चाहिये । तथा केवल कुम्भक के अभ्यास के बाद भी हर समय चलते-फिरते बैठते सोते भी चिन्तन सदा करते ही रहना चाहिये ।

उससे आने वाले सर्व विघ्नों की शान्ति होती है जैसे सूर्य के उदय होने से समस्त अंधकार का नाश हो जाता है। और प्रत्याहार की सिद्धि होती है।

। चिंतनविधि ।

हंकारेण बहिर्याति सकारेण पुनर्विशेत् ।
प्राणः सर्व शरीरेषु श्वासोच्छ्वासक्रमेण वै ॥

भावार्थ—सर्व पशु-पक्षी मनुष्यादि के शरीर में जो श्वास और प्रश्वास की गति से प्राण चलता है, वह हं शब्द से तो बाहर को आता है और सः शब्द से भीतर को प्रवेश करता है।

॥ हंसशब्दस्य व्याख्या ॥

हंसो हंसोऽहमित्येवं पुनरावर्त्तनक्रमात् ।
सोहं सोहं भवेन्नूनमिति योगविदो विदुः ॥

भावार्थ—हंस शब्द को बार बार उच्चारण करने से वह शब्द उलट कर सोहं सोहं बन जाता है। जैसे मरा मरा कहने से राम राम का उच्चारण वन जाता है। ऐसे योग विद्या के जानकार योगी लोग जानते हैं।

॥ अजपा गायत्री ॥

अजपा नाम गायत्री निरंतर जपात्मिका ।
गिरिजायै पुरा प्रोक्ता शिवेनेयं सुसिद्धिदा ॥

भावार्थ—इस सोहं शब्द को अजपा नाम गायत्री कहते हैं। इसका विना जप किये निरंतर अपने आप ही श्वास के

द्वारा जप होता रहता है और यह गायत्री प्रथम शिवजी ने पार्वती कोरुर्व सिद्धियों को देने वाली उपदेश करी है।

॥ गायत्रीमहिमा ॥

अस्याश्चिंतनतो नित्यं सर्वदुष्कृतराशयः।
योगिनां नाशमायांति तृणभारा यथाग्निना ॥

भावार्थ—इस अजपा गायत्री के नित्य प्रति चिंतन करने से योगी पुरुषों के सर्व जन्म जन्मांतरों के पाप समूह नष्ट हो जाते हैं। जैसे अग्नि के लगने से तृण (घास) के बड़े बड़े भार जल कर नष्ट हो जाते हैं।

॥ अजपा गायत्री की सिद्धि ॥

क्रमेणाभ्यास योगेन जायतेऽन्तर्मनोलयः।
प्राणश्च क्षीणतां याति योग निद्रा प्रजायते ॥

भावार्थ— इस गायत्री का अभ्यास करने से मन अंतर लीन हो जाता है, और मन के लीन होने से प्राण की गति भी क्षीण हो जाती है, और प्रत्याहार की सिद्धि होकर ध्यान में होने वाली योगनिद्रा की सिद्धि होती है, अर्थात् ध्यान में बहुत सहायता मिलती है।

नित्यमंतर्मुखत्वेन परमानन्दमात्मनः।
अनुभूय चिरंयोगी कैवल्यपदमश्नुते ॥

भावार्थ—और इस गायत्री का अभ्यास करने से

प्रत्याहार-धारणा, ध्यान-समाधि आदि की समस्त सिद्धि प्राप्त होकर योगी आत्मा के परम आनन्द का चिरकाल पर्यंत अनुभव करके बाद में देहांत काल में कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है ।शुभम् ।

॥ महापुरुषोपदेशः स्वानुभवे ॥

केवल कुंभक के समय श्वास को खींचने छोड़ने की जरूरत नहीं होती केवल जो हृदय में धड़का रहता है, उस धड़के के साथ ही सोहं गायत्री का चिंतन करते रहने से केवल कुंभक की सिद्धि होती है ।

तथा अभ्यास के बाद में तो हर समय जो श्वास आता जाता है इस के साथ ही चिंतन करना चाहिये, केवल कुंभक के अभ्यास के समय ही कलेजे के धड़के के साथ चिंतन करना चाहिये ॥

। अजपा गायत्री का भजन ।

सोहं शब्द विचारो योगी सोहं शब्द विचारो रे ।
माला करसे फिरत नहीं है, जीभ न वर्ण उचारोरे ।
अजपा जाप होत घटमांहि ताकि ओर निहारोरे ।
सोहं शब्द विचारो योगी० ।
सो अक्षर से श्वास खींचकर हं से बहिर निकालोरे ।
सोहं उलट होत है हंसः, योगी जन निर्धारोरे
सोहं शब्द विचारो योगी० ।
सब इक्कीस हजार मिलाकर छै सो होत शुमारोरे ।
उन श्वासों को बचा बचा कर जीवन करो सुखारोरे
सोहं शब्द विचारो योगी० ।

जो चिंतन करत निरंतर छोड़ जगत व्यवहारोरे ।
आत्म ज्ञान परम पद पावे मिटे जनम संसारोरे ।
सोहं शब्द विचारो योगी सोहं शब्द विचारोरे । शांतिः ।

॥ दोहा ॥

कबहुं न होवे सुख यहां, इन्द्रिय प्रीति बढ़ाय ।
ज्यों ज्यों इनको वेग हो त्यों त्यों दुःख दिखाय ॥

॥ उपदेश ॥

जो हम ऊपर लिख आये हैं, उस के अनुसार आहार व्यवहार चिंतवन करते हुये केवल कुंभक का अभ्यास करने से प्रत्याहार की सिद्धि हो सकती है ।

जब प्राण वायु लगभग डेड़ घंटा मस्तक में टिकने लग जावे तब आगे प्रत्याहार से धारणा का अधिकार प्राप्त होता है ।

॥ धारणा में शीघ्र प्रवृत्ति का उपाय ॥

(महापुरुष वाक्यम्)

केवलं कुंभकङ्कृत्वा सोहंचिन्तनपूर्वकम् ।
मनसा चिंतयेच्चापि पृष्ठे प्राणस्य रोहणम् ॥

भावार्थ—केवल कुंभक के समय कलेजे के धड़के के साथ सोहं के स्मरण पूर्वक मन से यह भी कल्पना करना चाहिये कि यह प्राण वायु, मेरू दंड से होकर मस्तक में जाकर स्थिर हो रहा है । इस प्रकार निश्चय करते रहने से जल्दी ही प्रत्याहार की सिद्धि होकर धारणा में प्रवेश हो सकता है ऐसा हमारे महापुरुष का वचन है । शुभम् ।

॥ अथ धारणा ॥

(राजयोगे अंतरंग मृत समाधि)

मस्तक में गया प्राण वायु दो २ घंटे याने (५ घंटी) बराबर टिकने लग जावे उसे धारणा कहते हैं, यहां से आगे धारणा का अभ्यास होता है, और यहां से प्राण की मृत संज्ञा हो जाती है।

मृतो जीवयति स्वयम्

भावार्थ–मृत प्राण याने मस्तक में टिके हुये प्राण अमर होते हैं, अर्थात् उसे मृत्यु नहीं खा सकती, जहां तक प्राण मस्तक में रहे वहां तक मृत्यु का जोर नहीं चलता। मस्तक में से उतरने के बाद मृत्यु का जोर चलता है। सोई श्रीमद् भागवत के द्वितीय स्कंध में लिखा है, आत्म ज्ञानी समाधिस्थ योगी को मृत्यु वगैरा दुःख नहीं दे सकते।

न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः,
कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे।
न यत्र सत्वंन रजस्तमश्च,
न वै विकारो न महान् प्रधानम् ॥

भावार्थ–जहां आत्मज्ञानी समाधिस्थ योगी समाधि में स्थिर है, वहां देवताओं के परम प्रभु काल की भी सामर्थ्य नहीं तथा जगत के ईश्वर देवताओं की भी भी सामर्थ्य नहीं। और सत्व गुण-रजोगुण तमोगुण भी वहां व्याप्त होते नहीं तथा अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति आदि को भी सामर्थ्य नहीं तो संसार जगत् का तो कहना ही क्या है वह क्या सामर्थ्य रख सकता है ?

अब धारणा के अभ्यास में योगी को आसन की स्थिरता की जरूरत है। यहां से आसन ही आगे बढ़ने को प्रधान होता है और इस विषय में महर्षि पतंजलि ने भी आसन को महत्त्व देकर समाधि का कारण बताया है।

॥ अथ धारणा मध्ये आसन विषयः ॥

पातंजल योगे सूत्राणि

स्थिरसुखमासनम् ।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥

ततोद्वंद्वानभिघातः ॥

भावार्थ—आसन वही सिद्ध माना जाता है जिससे सुखपूर्वक बहुत समय तक बैठा जासके और कष्ट न हो ऐसे आसन से बैठ कर देह तथा मन के समस्त प्रयत्नों को त्याग कर केवल काष्ठ के समान बैठ कर लक्ष्य को स्थिर करने मात्र से ही समाधि में प्रवेश हो जाता है और जब समाधि में प्रवेश हो जाता है, तो वह योगी जहां तक समाधि में स्थिर रहता है, उतने समय तक सर्दी, गरमी, क्षुधा, पिपासा, आदि द्वंद्व दुःख, उसे नहीं सता सकते।

पातंजल योग सूत्रम्—

प्रकाश क्रिया स्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।

भावार्थ—स्थिर आसन से काष्ठ के समान विना हलचल से बैठने की सत्वगुण और प्रकाश संज्ञा है और इसी से शांति प्राप्त हो कर जीव ब्रह्म की एकता होती है। तथा जिसमें

शरीर हिले अर्थात् कर्म करे उसकी रजोगुण क्रिया संज्ञा है, जो सत्कर्म से स्वर्गादि सुखों को देकर पीछा जीव को संसार में लाती है। तथा काम-क्रोध लोभ निद्रा तथा मन और इन्द्रियों की व्यर्थ चेष्टा चंचलता और आलस्यादि की तमोगुण स्थिति संज्ञा है। ऐसे प्राणी अधोगति को जाते हैं।

इस योगसूत्र के सिद्धांत से तो प्रत्येक योगी को प्रकाश सत्व शान्ति में ही सदा सर्वदा रहना उचित है जो जीव ब्रह्म की एकता करता है।

वास्ते अब यहां प्रकाश की सिद्धि के लिये आसन को लिखते हैं।

॥ आसनम् ॥

मोक्षे सिद्धं मृते पद्मम् अन्य कार्ये च स्वस्तिकम्।
श्रमे शवासनं कुर्यात् पश्चिमं ह्युदरे कृशम् ॥

भावार्थ—प्राण के त्यागने के समय सिद्धासन से बद्धप्राण मोक्ष देता है। तथा धारणा, ध्यान समाधि जो मृतप्राण की क्रिया है। इसमें पद्मासन बहुत लाभप्रद होता है। तथा योगाभ्यास के श्रम को हरण करने में शवासन प्रसिद्ध है। तथा पेट के वायु को हरण कर उदर को कृश करने में पश्चिमतान आसन शुभ होता है।

इस प्रमाण से (मृतेपद्मम्) मृत समाधि जो धारणा है इसमें पद्मासन को स्थिर करना उचित है और पद्मासन से धारणा का अभ्यास करना उचित है, पद्मासन का विधान हम ऐहलौकिक क्रिया में लिख आये हैं, देखो।

॥ आसन की स्थिरता ॥

स्थिरं स्यादासनं यस्य स योगं कर्तुमर्हति ।
शरीराचलताभावे नहि चित्तं स्थिरं भवेत् ॥

भावार्थ—जिस पुरुष का आसन स्थिर होवे वही योग का अभ्यास साधन कर सकता है। क्योंकि शरीर की अचलता के बिना मन कभी स्थिर नहीं हो सकता है। वास्ते अल्पाहार द्वारा आसन को स्थिर करना चाहिये।

॥ आसन का फल ॥

आसने स्थिरतां याते मनः स्थैर्यं भवेध्द्रुवम् ।
प्राणस्यापि गतिर्नूनं शिथिला संप्रजायते ॥

भावार्थ—आसन की स्थिरता से निश्चय करके मन भी स्थिर हो जाता है और प्राण वायु की गति भी निश्चय करके सूक्ष्म हो जाती है।

इन्द्रियाणां च चापल्यं शांतिमायाति निश्चितम् ।
ततो योगस्य सिद्धिःस्यात् तस्मादासनमभ्यसेत् ॥

भावार्थ—तथा आसन को स्थिरता होने से इन्द्रियों की जो स्वाभाविक चंचलता है, वह भी शान्त हो जाती है। इस तरह मन, प्राण इन्द्रियों की स्थिरता होने से शीघ्र ही योग की सिद्धि होती है, वास्ते ध्यान समाधि में पहुंचने के लिये आसन को ही मजबूत करना ठीक है ।

॥ उपदेश ॥

भ्रमणं तीर्थयात्रासु नैव कार्यं हि योगिना ।
स्थित्वा स्थाने सदैकस्मिन् योगाभ्यासं समाचरेत् ॥

भावार्थ—योगी पुरुष को तीर्थों की यात्रा आदि में भ्रमण नहीं करना चाहिये, किन्तु सदा सर्वदा आजीवन पर्यन्त एक स्थान में ही निवास करते हुए योग में तत्पर रहना चाहिये ।

॥ धारणा सिद्धि ॥

योगिनां क्षीणपापानां नित्यमेकांत वासिनाम् ।
युक्ताहारविहाराणां सिद्धा भवति धारणा ॥

भावार्थ—जिन योगी पुरुषों के सर्व पाप क्षीण हो जाते हैं और हर समय एकान्त स्थान में निवास करते हैं, तथा जिनका आहार व्यवहार योगाभ्यास के अनुकूल युक्ति पूर्वक होता है, उन योगियों को ही उक्त धारणा की सिद्धि होती है ।

॥ संकेत ॥

इस प्रकार हमारे बताये अनुसार पद्मासन को मजबूत करके अभ्यास करते २ जब पद्मासन बीस घण्टे स्थिर होने लगे तब आगे ध्यान का अधिकार प्राप्त होता है । अर्थात् उस योगी को ध्यान की सिद्धि हो सकती है ।

॥ अथ ध्यानम् ॥

(राजयोगे मृत अंतरंग समाधि)

जब चौबीस घण्टे पद्मासन से ध्यान होता है तब ध्यान की सिद्धि मानी जाती है इसके आगे योगी को ध्यान का साधन अभ्यास की भूमिकाओं की उन्नति के साथ करना चाहिये ।

॥ परिचय ॥

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि मुक्तिसाधनमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा न पुनर्जंतुर्जातु मातुः स्तनं पिबेत् ॥

भावार्थ– अब योग का प्रधान अंग जो ध्यान है, उसका निरूपण करते हैं। जो ध्यान ही जीव की मुक्ति का परम श्रेष्ठ साधन है। जिस ध्यान के करने से यह जीव फिर कभी माता के स्तन को पान नहीं करता अर्थात् जन्म-मरण से छूट जाता है।

॥ ध्यान प्रधान श्लोक ॥

बाह्यचिन्ता न कर्तव्या तथैवान्तरचिन्तनम् ।
सर्वचिन्तां परित्यज्य न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ह.प्र.

भावार्थ-ध्यानस्थित योगी को बाहर की सर्व चिन्ता का त्याग करके तथा भीतर मन में भी विषयों के संकल्प याने आशा मोदक मन्दिर, वाटिका आदि उनका भी चिंतन न करे। इस प्रकार बाहर भीतर की सम्पूर्ण चिंताओं का

परित्याग करके किंचित् भी प्रयत्न न करते हुए केवल ध्यान के ही प्रयत्न में स्थिर हो जावे ।

॥ ध्याने आहार शुद्धिः ॥

चतुर्थ्यां भूमिकायांहि रसाम्बु केवलं भवेत् ।

भावार्थ—इस पूरी भूमिका के पूरे श्लोक को आगे लिख आये हैं । वास्ते यहाँ इतना ही लिखा है, अर्थात् जो ध्यान की चौथी भूमिका है, इसमें योगी को केवल दूध में पानी मिला कर या मोसम्मी का रस या द्राक्षा का जल इनका ही सेवन करना चाहिये । यदि शरीर में वायु का विकार मालुम दे तो दूध लेते समय ईसबगोल, औषधि दूध में डाल कर लेवे बस ध्यानोचित आहार यही है, क्षुधा मालूम दे तो थोड़ा साबू-दाना ले सकते हैं ।

॥ अथ ध्यान सिद्धि समय ॥

ब्रह्मचारी सत्यवादी भवेद् ध्यान परायणः ।
अब्दादूर्ध्वं च सिद्धिः स्यात् केवलं दुग्धसेवनात् ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए और सत्य भाषण करते हुए तथा केवल दूध का ही आहार करते हुए जो योगी ध्यान परायण होंगे उनको एक वर्ष के बाद शीघ्र समाधि की सिद्धि प्राप्त हो सकती है ।

॥ अथ ध्यान विषय ॥

सगुणं निर्गुणं चैव द्विधा ध्यानं प्रकीर्तितम् ।
सगुणं व्यक्तियुक्तं स्यादव्यक्तं निर्गुणं भवेत ॥

भावार्थ—ध्यान दो प्रकार का होता है, व्यक्तियुक्त ध्यान कोसगुण कहते हैं और अव्यक्त तेजोमय ध्यान को निर्गुण महापुरुषों ने कथन किया है।

॥ शास्त्रार्थ ॥

व्यक्तियुक्त ध्यान मृत्यु लोक तथा स्वर्गादिक के अनेक सुख भोगों को देता है और निर्गुण तेजोमय ध्यान जीवब्रह्म की एकता करके मोक्ष देता है और जिसका ध्यान किया जाय, यह जीव उसी में तल्लीन हुवा करता है और उसी के भाव ग्रहण करता है।

व्यक्तियुक्त ध्यानार्चन त्रेतारंभ से तथा अव्यक्त उपासना सतयुगादि कही है। भागवत में लिखा है—

॥ उपासना ॥

भागवत ७ स्कंधे श्लोकः—

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ।
त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिःकृता ॥

भावार्थ—जब मनुष्य पात्र और आत्मज्ञानी थे तब मनुष्यों के शरीर में ही परमात्मा की पूजा उपासना किया करते थे। जब मनुष्यों के मन में विकार आ गया और परस्पर द्वैत भाव समझने लगे तब त्रेतायुग के प्रारंभ में, बुद्धिमान् महापुरुषों ने परमात्मा की पूजा उपासना (प्रतिमा) मूर्तियों में करनी आरंभ कर दी। जो कि भाव से पूजन उपासना करने वालों को मृत्युलोक तथा स्वर्गादिकों के

अनेकों सुख भोगों को देने वाली है। वह प्रतिमायें वेदमन्त्रों द्वारा चैतन्य होकर संसारी मनुष्यों की कामनायें पूर्ण करती हैं।

॥ ईशावास्योपनिषद् वचनम् ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥

भावार्थ–जिन लोगों ने प्रतिमादि देवताओं की उपासना तथा निर्गु ण तेजोमय ब्रह्म की उपासना इन दोनों के फल को साथ २ जान लिया है वह, साकार देवताओं की उपासना से चौरासी लक्ष में जन्म तथा नरक से छूट कर अविनाशी तेजोमय निर्गु ण ब्रह्म को उपासना से अमृत को पान करते हैं, अर्थात् ब्रह्म में मिल जाते हैं।

॥ विचार सम्मति ॥

इन निर्गुण सगुण दोनों पर शास्त्र के अनुसार विचार करने से तो जो जीव ब्रह्म की एकता करता है, उसी अविनाशी तेजो मय ब्रह्म की ही उपासना करना मोक्ष के लिये ठीक समझता हूँ और निर्गु ण ध्यान को यहां विस्तार से कहता हूं।

॥ ध्यान की भूमिका ॥

(योग निद्रा)

जब योगी धारणा सिद्ध करके ध्यान में पहुंचता है, तब उसको योग निद्रा की भूमिका आती है।

दिनैः कतिपयैरेवमभ्यासं कुर्वतः सदा ।
योगिनो योगनिद्रा वै समुदेति सुखप्रदा ॥

भावार्थ—इस प्रकार कितनेक दिन अभ्यास करने से जब योगी ध्यान में पहुंचता है तब ध्यान की भूमिका में योगी को आनन्द की देने वाली योग निद्रा शुरू होती है। अर्थात् निद्रा की तरह जाग्रतावस्था में चित्त का लय होने लगता है।

योगनिद्रा चिराभ्यासान्निर्विकल्पः प्रजायते ।
विस्मृत्य सकलं बाह्यं समाधिस्थो भवेन्नरः ॥

भावार्थ—और उस योग निद्रा के दीर्घकाल अभ्यास करने से योगी निर्विकल्पावस्था को प्राप्त होकर बाह्य प्रपंचों को भूल कर राजयोग समाधि में स्थिर हो जाता है, जिस योग निद्रा से भगवान नारायण शयन करते हैं।

जब योगी को योगनिद्रा का आरंभ हो जाता है, तब योगी को तामसी निद्रा जो संसार के समस्त प्राणी लेते हैं, उसे लेने की जरूरत नहीं रहती, योगी केवल पद्मासन से ध्यान पूर्वक जो योग निद्रा प्राप्त करता है, वही उसकी निद्रा है। अर्थात् २४ घण्टे पद्मासन से ध्यान करने वाला योगी निद्रा जीतता है, फिर उसे निद्रा नहीं घेरती। परन्तु यदि योगी दो चार दिन ध्यान में नहीं बैठे तो पुनः तामसी निद्रा आ घेरती है। वास्ते योगी ने नित्य ध्यान साधन को करना कभी भी त्यागना नहीं, नित्य बैठना चाहिये एक दिन भी त्यागना श्रेष्ठ नहीं। इति योग निद्रा प्रकरणम्।

॥ अथ ध्याने नाद प्रकरणम् ॥

जब योगी का पद्मासन २४ घंटे स्थिर हो कर ध्यान में तत्पर रहता है। उस समय जीव का अनाहत चक्र से अनाहत नाद का शब्द जो कर्ण में होता है। उस अनाहत नाद की अन्तिम भूमिका जो भ्रमर और वीणा की है, वह इस समय भूमिका आजाती है और बाद में सर्व तत्त्व वायु में और वायु नाद में और नाद वायु को लेकर ब्रह्म में लय हो जाता है और निर्विकल्पता आजाती है और समाधि में प्रवेश हो जाता है। फिर द्रष्टा का दृष्य नहीं रहता अर्थात् एक ही अद्वैत ब्रह्म रह जाता है, और सर्व नष्ट हो जाता है।

॥ अनाहतनादका पूर्ण परिचय ॥

अथ नादानुसंधानं प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
यस्यानुष्ठानतो योगी परं ब्रह्माधि गच्छति ॥

भावार्थ—अब यथाक्रम से नादानुसंधान का निरुपण करते हैं। जिस नादानुसंधान के श्रवण करने से योगी परब्रह्म भाव को प्राप्त होता है।

॥ योग सवा करोड़ है ॥

श्री आदिनाथेन सपादकोटि
लयप्रकाराः कथिता जयंति ।
नादानुसंधानकमेकमेव
मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम् ॥ ह. प्र.

भावार्थ–श्री आदिनाथ शिवजी ने मन को लय करने के उत्तम प्रकार से सवा करोड़ मार्ग वर्णन किये हैं। जिन सभी मार्गों में हम तो सर्व शिरोमणि नादानुसंधान को ही मुख्य लय समझते हैं। जो गोरक्षनाथजी को भी अभिमत है।

॥ श्रेष्ठ सार निरूपण ॥

नासनं पद्मसदृशं न कुंभः केवलोपमः।
नाज्ञाचक्र समं ध्यानं न नादसदृशो लयः॥

भावार्थ–पद्मासन के समान आसन नहीं और केवल कुँभक के समान कोई दूसरा कुम्भक नहीं। तथा आज्ञाचक्र के समान ध्यान मोक्ष के लिये नहीं तथा अनाहत नाद के समान दूसरा कोई मनोलय समाधि नहीं यह योग में चार बातें प्रधान हैं।

॥ अथ नाद विषय ॥

॥ सम्पूर्ण भूमिका स्वानुभवे तथा शास्त्रे ॥

आदौ जलधिजीमूत भेरी झर्झर संभवाः।
मध्ये मर्दल शंखोत्था घण्टा काहलजास्तथा॥
अंतेतु किंकिणी वंश वीणा भ्रमरनिस्वनाः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते च यथाक्रमम्॥

भावार्थ–अब दो श्लोकों में नाद की भूमिकाओं का वर्णन करते हैं। प्रथम प्रथम प्राणवायु जब सुषुम्ना में प्रवेश करता है। तब मेघ, समुद्र, नगारे आदि का शब्द दक्षिण कर्ण में सुनाई देता है। तथा जब प्राण वायु सुषुम्ना

के मध्य में रहता है तब घंटा शंख बंसरी आदि के शब्द सुनाई देते हैं। तथा जब प्राण वायु सुषुम्ना के ऊपरी भाग में लय होने लगता है। तब आखिरी प्राण के लय के समय में भ्रमर और वीणा का शब्द सुनते सुनते योगी के प्राण वायु नाद में लय होकर समाधि हो जाती है। इस प्रकार क्रम से नाना प्रकार के नाद योगी लोग यथा क्रम से सुनने का महा आनन्द प्राप्त करते हैं। जो नाद सम्पूर्ण लोकों में ब्रह्म रूप से व्याप्त हो रहा है और क्षण मात्र में शब्दों को दूर दूर ले जाकर फेंकता है।

॥ अनाहत नाद का भजन ॥

अनहत की धुन बाली योगी अनहत को धुन बाली रे ।
आसन पद्म लगाकर दक्षिण कर्ण सुणो सुखकारी रे ।
झीणि धुन में सुरत लगावो नाद होय झणकारा रे ॥
अनहत की धुन बाली योगी;
प्राण प्रवेश समय से होवे उत्तम न्यारी न्यारी रे ।
मेघ, समुद्र, नगारे झर्झर, घंटा, शंख, बंसरी रे ॥
अनहत की धुन बाली योगी;
लय में अन्त भ्रमर ने वीणा नाद होय सुखकारी रे ।
अमृत बूँद झरे सुखमांहि योगी मनलय कारी रे ॥
अनहत को धुन बाली योगी;
तन की सुधि सब भूल जात है, घट में ब्रह्म प्रकाशी रे ।
आत्मज्ञान परम पद पावे नाद सुणत अविनाशी रे ॥
अनहत की धुन बाली योगी, अनहत की धुन बाली रे ॥

॥ इति ध्याने नाद प्रकरणम् ॥

॥ स्वेद (पसीना) ॥

योग साधन में तत्पर योगी को पसीना आना ठीक नहीं पसीना धातुओं पर कोप करता है। आसन करते समय का पसीना आसन के फल को कनिष्ठ बना देता है। प्राणायाम के समय का पसीना प्राणायाम को कनिष्ठ बना देता है। तथा राजयोग में स्थित योगी को तो पसीना आना ही ठीक नहीं वास्ते राजयोगी को तो चौबीसों घंटे ध्यान रखना चाहिये। चाहे वह साधन में बैठे या न बैठे दोनों समय में पसीनें का पूरा खयाल रखना चाहिये। राजयोगी को पसीना धातुओं पर विजय नहीं होने देता। तथा अभ्यास को आगे नहीं बढ़ने देता वास्ते राजयोगी पसीनें का पूरा ध्यान रखे। तथा हठ योग में आसन प्राणायामों में यदि पसीना आ भी जावे तो उसे शास्त्र वचनानुसार मल लेवे।

जलेन श्रम जातेन गात्रमर्दनमाचरेत्।
दृढ़ता लघुताचैव तेन गात्रस्य जायते ॥

भावार्थ--यदि आसन प्राणायाम के अभ्यास के समय पसीना आजावे तो उसे तेल के समान मल लेवे। नहीं मलने से शरीर का धातु बिगड़ जाता है और मल लेने से शरीर की दृढ़ता और लघुता होती है, अर्थात् जड़ता नहीं रहती। शुभम्।

॥ ध्यानम् ॥

अब हम निर्गुण तेजोमय ध्यान के लक्ष को स्वानुभव

तथा शास्त्रों के मिलान के साथ लिखते हैं जो जीव ब्रह्म की एकता करता है।

पद्मासने स्थितो योगी स्थिरकायः समाहितः।
निमील्य नयने पश्येद् भ्रुवोर्मध्ये सदाधिया ॥

भावार्थ—पद्मासन से बैठ कर शरीर को स्थिर रख करके और चित्त को एकाग्र करके दोनों नेत्रों को बन्द करके, अन्दर से मन की वृत्तिरूप दृष्टि से दोनों भ्रुवों के मध्य भाग में निरंतर देखना चाहिये।

दृश्यते प्रथमाभ्यासे नभः कृष्णं तु केवलम्।
ततस्तारानिभं तेजो दृश्यते तु कदा कदा ॥

भावार्थ—प्रथम अभ्यास काल में केवल काले रंग का आकाश देखने में आता है, और पीछे कुछ दिनों के बाद तारा के समान कभी २ तेज नजर में आता है।

नानावर्णयुतं पश्चादस्थिरं दृष्टिगं भवेत।
ततोऽर्धचंद्रसंकाशं शून्यचक्र समं ततः ॥

भावार्थ—तिसके पीछे नाना प्रकार के रंगों से युक्त चंचल तेज देखने में आता है, अर्थात् जिस समय जो तत्त्व शरीर में चलता है, उसी तत्त्व का रंग तेज में दिखता है और उसके बाद अर्धचन्द्राकार ज्योति नजर में आती है और उसके बाद चारों तरफ तेज और बीच से खाली इस प्रकार चक्र के समान देखने में आता है।

पूर्णचक्रसमं पश्चात् सूर्यमंडल संनिभम्।
दृश्यते परमं ज्योतिर्ब्रह्मभूतं निरामयम् ॥

भावार्थ—और उसके बाद कुछ दिन अभ्यास बढ़ने से पूर्ण चक्र के समान तेजोमय ज्योति के दर्शन होते हैं और उसके बाद साक्षात् सूर्य मंडल के समान ब्रह्मरूप परमानन्द-मय ज्योति के दर्शन होते हैं।

परमानन्द संदोहमज्ञान ध्वांत नाशनम्।
योगिनो मनसस्तुष्टिकरं क्लेशहरं परम्॥

भावार्थ—वह ब्रह्ममय ज्योति परमानन्द को देनेवाली तथा अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करनेवाली और योगी के सर्व क्लेशों का नाश करने वाली और योगी के मन को परम संतोष देने वाली है।

क्षणं दृष्टिगतंभूत्वा पुनस्तत्प्रविलीयते।
ततोऽभ्यासे दृढीभूते स्थिरं भवति कालतः॥

भावार्थ—और वह तेज क्षणमात्र दृष्टिगोचर होकर फिर शीघ्र ही लीन हो जाता है और बाद अभ्यास के दृढ़ होने से वह ब्रह्म तेज दृष्टि के आगे स्थिर हो जाता है।

दिनानुदिनमित्येवं निर्विघ्नाभ्यासतो दृढम्।
क्रमाद्विस्तारमायाति तज्ज्योतिः परमं महत्॥

भावार्थ—ध्यान का दिन प्रति दिन उक्त प्रकार से अभ्यास बढ़ने से वह ब्रह्म की परम ज्योति क्रम से विस्तार को प्राप्त हो जाती है। और दर्शन देती है जो मोक्ष का स्वरूप है।

॥ स्वानुभव भूमिका ॥

यहां तक ध्यान की भूमिका में हम पहुंचे हैं और इसके आगे की भूमिकाओं में प्रवेश के लिये ध्यान के साधन में तत्पर हैं और भूमिकाओं की उन्नति के लिये इच्छुक हैं। वास्ते इसके आगे को जो भूमिकायें हैं उनको अब हम शास्त्र के प्रमाण से ही लिख रहे हैं कारण हमें आगे स्वानुभव नहीं।

आदौ गृहगतं सर्वं वस्तु ध्याने निरीक्ष्यते।
ततो बाह्यं ततो दूरं ततोदूरं तरं पुनः ॥

भावार्थ—जब दीर्घकाल के ध्यान से तेज का बिस्तार होने लगता है तो पहिले अपने घर के अन्दर पड़ी हुई वस्तु सब देखने में आती है और फिर बाहर की वस्तु नजर आती है और उसके पीछे दूर की वस्तु देखने में आती है और विशेष अभ्यास बढ़ने से बहुत योजन दूर के पदार्थ देखने में आते हैं।

नानावनानि रम्याणि निर्मलानि सरांसि च।
समीपस्थानि दृश्यंते गिरीणां शिखराणि च ॥

भावार्थ—तथा नाना प्रकार के दूर के रमणीय वन और निर्मल सरोवर तथा हिमालयादि पर्वतों के शिखर अपने समीप के समान देखने में आते हैं।

सिद्धा महर्षयश्चैव दृश्यन्तेऽम्बरचारिणः।
तारका मंडलं सर्वं देवतायतनानि च ॥

भावार्थ—तथा आकाश में विचरने वाले सिद्धलोक और महर्षिलोग तथा सर्व ताराओं का मण्डल और देवताओं के स्थान समीप देखने में आते हैं।

एवं क्रमेण कालेन योगिनोऽभ्यास योगतः।
दिव्यादृष्टिर्भवत्येव त्रैलोक्यालोकने क्षमा ॥

भावार्थ—इस प्रकार शनैः शनैः क्रम से दीर्घकाल के अभ्यासयोग से योगी को तीनों लोकों के देखने वाली दिव्य दृष्टि हो जाती है।

स्वयं ज्योतिर्मयोभूत्वा योगी तद्गत मानसः।
ब्रह्मण्येव लयं याति परे ज्योतिः स्वरूपिणि ॥

(इस प्रकार यह ध्यान सिद्धि की भूमिकायें हैं, जिस योगी को सिद्धियों का सुख नहीं चाहिये केवल मोक्ष की वाञ्छा वाले हैं) वह योगी तेजोमय ज्योति के ध्यान की तत्परायणता से आप भी ज्योतिः स्वरूप हो परमज्योतिः स्वरूप ब्रह्म में लय हो समाधि में स्थिर हो जाते हैं।

संकेत—इस प्रकार ध्यान का साधन करते करते जब तीन दिन तक पद्मासन से लयता रहे तब योगी का आगे समाधि में अधिकार प्राप्त होता है। फिर समाधि का अभ्यास करना चाहिये। शुभम्।

॥ इति ध्यान प्रकरणम् ॥

॥ अथ समाधिप्रकरणम् ॥

(अथ राजयोगे अंतरंग मृत समाधिः)

समाधिमधुना वक्ष्ये भवपाशनिकृंतनम् ।
समाधानं हि चित्तस्य समाधिं मुनयो विदुः ॥

भावार्थ—अब मोक्ष के हेतु समाधि का वर्णन करते हैं चित्तका जो समाधान अर्थात् स्थिर शांत अवस्था जो है, उसको मुनि लोग समाधि कहते हैं । शुभम् ।

अभ्यास करते २ जब पांच दिन तक प्राण का लय होने लग जावे उसे समाधि कहते हैं तथा बारह दिन तक एक आसन से स्थिर प्राण लय लेवे उसको पूर्ण समाधि कहते हैं । इसके बाद महायोग समाधि बहुत समय चिरकाल की मानी जाती है ।

प्रथम समाधि के अभ्यास में दुग्धाम्बु के सिवाय कुछ भी आहार नहीं लेना चाहिये, अन्य सर्व आहारों को त्यागना चाहिये ।

सर्वाहारं परित्यज्य केवलं दुग्धभुग्भवेत् ।
शरीरलघुताभावे प्राणाकृष्टिर्न जायते ॥

भावार्थ—समाधि में प्राण के चढ़ाने के अभ्यास काल में सर्व प्रकार के आहारों का परित्याग करके योगी पुरुष को केवल दूध जल का ही पान करना चाहिये । क्योंकि अन्य दूसरे आहार लेने से शरीर के हलके नहीं होने से सर्व शरीर से प्राणों का आकर्षण ठीक प्रकार से नहीं हो सकता है । वास्ते दूध जल ही श्रेष्ठ है ।

॥ समाधि ॥

सर्वांगेभ्यः समाकृष्टो यदा प्राणानिलो व्रजेत्।
ब्रह्मरंध्रप्रदेशेण समाधिर्जायते तदा॥

भावार्थ--जब दीर्घकाल ध्यान के अभ्यास से शरीर के सब अंगों से खींचा कर सम्पूर्ण प्राण वायु मस्तक में चढ़ जावे तो उस समय में समाधि हो जाती है।

देहशून्यो भवेत्सर्वो जगद्विस्मरणं भवेत्।
स्वप्रकाशे परानंदे मनोवृत्तिर्विलीयते॥

भावार्थ--जब सर्व शरीर प्राणों से रहित शून्य हो जाता है और बाह्य प्रपंचों का विस्मरण हो जाता है और योगी की मनोवृत्ति स्वयं प्रकाश स्वरूप परमानन्द रूप हो जाती हैं।

अंतर्दृष्टिप्रकाशेतु त्रैलोक्यं सचराचरम्।
दृश्यते स्वसमीपस्थं करामलकवत्स्वयम्॥

भावार्थ--और जब उस अन्तर्दृष्टि का प्रकाश दीर्घकाल के अभ्यास से फैल जाता है, तो योगी को तीनों लोकों के चराचरात्मक सर्व पदार्थ करामलक की तरह अपने समीप स्थित स्वयमेव देखने में आते हैं।

बाह्यं विस्मृत्य निद्रायां स्वप्नं पश्येन्नरो यथा।
समाधिसमये तद्वद्योगी विश्वं प्रपश्यति॥

भावार्थ--जिस प्रकार निद्रा काल में बाह्य प्रपंचों को

भूल कर मनुष्य स्वप्न को देखता है वैसे ही समाधि काल में योगी बाह्य प्रपंचों को भूल कर अन्तर्दृष्टि से जगत् को देखता है ।

॥ समाधिदर्शन ॥

स्वप्नदृष्टपदार्थौघो मृषा भवति निश्चितम् ।
समाधौ त्वमृषा सर्वं वस्तु कार्यकरं तथा ॥

भावार्थ—परन्तु स्वप्न और समाधि में इतना भेद है, कि स्वप्न में देखे हुये पदार्थ समूह प्रायः करके मिथ्या हो जाते हैं और समाधि काल में देखी हुई वस्तुयें सब सत्य और काम करने वाली होती हैं ।

॥ समाधि में पतनदोष ॥

तस्मादास्तिक भावेन कुर्याद्योगस्य साधनम् ।
अवश्यं सिद्धिमाप्नोति निर्वेदान्न जहाति चेत् ॥

भावार्थ—वास्ते योगी पुरुष ने श्रद्धा आस्तिक भाव से निरालस्य होकर योग का अभ्यास करना चाहिये तो अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी तथा जो कदाचित् अभ्यास के परिश्रम से घबराकर उपराम होकर बीच में नहीं छोडेगा और आलस्य को त्याग साधन करेगा तो सिद्धि प्राप्त होगी नहीं तो पतन होगा । शुभम् ।

॥ संकेत ॥

इस प्रकार अभ्यास करते-करते जब चार दिन पद्मासन से प्राणवायु लय लेवे तब समाधि की सिद्धि के लिये आहार

को त्यागे कारण पांच दिन में समाधि की सिद्धि होती है तथा बारह दिन में पूर्ण समाधि की सिद्धि। इसके बाद महायोग होता है। वास्ते उपवासों को लिखते हैं।

॥ अनशने भेदाः ॥

प्राणस्यारोहणे वापि परकायप्रवेशने।
शरीरमोक्षणे चादौ भोजनं परिवर्जयेत ॥

भावार्थ—समाधि में प्राण के मस्तक में चढ़ाने के समय और परकाया प्रवेश के समय तथा देह त्याग करने के समय थोड़े दिन पहिले से निराहार रहना चाहिये।

अब हम निराहार के समय को कहते हैं कि जब पांच दिन की समाधि में बैठना हो तो एक दिन निराहार रहकर बैठे तथा बारह दिन की समाधि के लिये तीन दिन पहिले से निराहार तथा इसके बाद २१ दिन तक की समाधि के लिये पांच दिन निराहार तथा इसके उपरांत दीर्घकाल की समाधि के लिये नवदिन निराहार से शुभ रहता है। वास्ते योगी ने समाधि के साधन के अनुकूल निराहार रहना चाहिये।

योगाभ्यासे प्रवृत्तस्तु शीघ्र सिद्धिं न कामयेत्।
कालेन दुरिते क्षीणे स्वतः सिद्धिः प्रजायते ॥

भावार्थ—योगी को शीघ्र ही समाधि की सिद्धि की वाञ्छा नहीं करनी चाहिये, किन्तु धीरे २ अभ्यास करते रहने से और सर्व संचित पापों का नाश हो जाने से अपने आप ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

विघ्ना बहुविधा योगे भवंतीति विनिश्चितम्।
तथापि साधयेद्योगी योगं धृतिपरायणः ॥

भावार्थ—योगाभ्यास में प्रवृत्त योगी को बहुत प्रकार के शरीर रोगादिक विघ्न आकर अभ्यास से चलायमान करते हैं, यह बात निश्चित है, तो भी धैर्य परायण हो कर योगी को अवश्य योग का साधन करना चाहिये।

अभ्यास करते २ जब बारह दिन की समाधि की सिद्धि का समय आवे तब योगी जीवन्मुक्त हो जाता है ।

॥ जीवन्मुक्तिः ॥

जीवन्मुक्तिरियं प्रोक्ता जीवतां बंधहारिणी ।
शास्त्रावलोकनेनैव जीवन्मुक्तो न जायते ॥

भावार्थ—जीते जीव ही जो समाधि से स्थूल शरीर के बंधन से छूट जाता है, उसको पूर्व के ऋषि लोगों ने जीवन्मुक्ति कथन करी है। क्योंकि वेदांतादि शास्त्रों के पढ़ने से और सुनने मात्र से यह पुरुष जीवन्मुक्त नहीं हो सकता है, साधन से ही होगा। शुभम् ।

॥ जीवन्मुक्तरूपम् ॥

(दत्तात्रेयेण)

निर्गुणं ध्यान संपन्नः समाधिं च ततोऽभ्यसेत् ।
दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् ॥
वायुं निरुध्यमेधावी जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥

भावार्थ—दत्तात्रेयजी ने जीवन्मुक्त का स्वरूप यह कहा है कि निर्गुण के ध्यान में संपन्न मनुष्य समाधि का अभ्यास करे तो तीव्र आकांक्षा वाला बारह दिन में ही समाधि की सिद्धि को प्राप्त होता है और वह बुद्धिमान योगी वायु को रोक कर निश्चय से जीवन्मुक्त होता है। शुभम्। इति जीवन्मुक्तिः ॥

॥ अथ त्रिविधतापम् ॥

आध्यात्मिकादिभिर्दुःखै रविमुक्तस्य कर्हिचित् ।
मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥

भावार्थ—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, त्रिविध ताप का मृत्युरूपी कालचक्र तो शिर पर घूम ही रहा है और कोई प्रकार से पुरुष ने परिश्रम करके धन और सुख प्राप्त भी कर लिया तो उससे क्या।

सच्ची सुख शांति तो वह है कि त्रिविध ताप के भयंकर काल-चक्र से यह मनुष्य अपने को मुक्त कर ले।

अब हम त्रिविध तापादि से विजय प्राप्त करने के उपायों को कहते हैं।

॥ श्रीमद् भागवते ७ स्कंधे ॥

॥ त्रिविध ताप से विजय ॥

योगान्तरायान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ।
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना ॥
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्व निषेवया ॥

भावार्थ—मौनवृत्ति धारण कर योग के विघ्नरूप मिथ्या वार्त्तालाप को जीते। सम्पूर्ण जीवों से स्नेह (प्रेम) करके भूतज दुःखों को जीते और दैव कृत क्लेशों सर्दी गर्मी क्षुधा पिपासा रोग ताप क्लेश आदि को समाधि से जीते और अद्वैत अहं ब्रह्मास्मि पद को सिद्ध कर उस योगबल से जीवात्मा के जन्म मरणादि कष्ट को जीते। तथा सात्विक भोजनादिक से निद्रा को जीते। शुभम्।

॥ इति तापशमन प्रकरणम् ॥

॥ अथ जीवन्मुक्त पुरुष के कर्तव्य ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
शौचं तोषस्तपश्चैव जपश्चेश्वरचिंतनम् ॥

भावार्थ—जो पुरुष संपूर्ण जीव मात्र की दया करते और मन-वाणी शरीर से किसी को भी दुःख नहीं पहुंचाते। तथा कभी भी कैसे भी संकट के समय में भी झूँठ नहीं बोलते। तथा किसी के साथ कपट नहीं करते और किसी से छिपाव नहीं रखते और किसी की वस्तु चुराने को तनिक भी इच्छा नहीं रखते। तथा ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य को रक्षा करते हैं और इस संसार में सादा जीवन बिताते हुये और संसार की समस्त वस्तुओं को नाशवान और मिथ्या जान कर उसमें मोह को नहीं रखते हुए देह नाम शरीर और गेहादि नाम घर आदि समस्त वस्तुओं में मोह को नहीं रखते हैं।

तथा भीतर और बाहर से मन वाणी व शरीर आदि को शुद्ध रखते हैं।

॥ शुद्धिः ॥

॥ श्रीमद् भागवते १० स्कंधे ॥

कालेन स्नान शौचाभ्यां संस्कारै स्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥

भावार्थ--समय से पृथ्वी को शुद्धि होती है । स्नान करने से बाह्य शरीर की शुद्धि होती है । धोने से वस्त्र की शुद्धि होती है । तथा संस्कारों से गर्भादि की शुद्धि होती है और चांद्रायणादि तप से इन्द्रियों तथा काया के अंदर की शुद्धि होती है और यज्ञ, हवन करने से ब्राह्मणादि वर्णों के शरीर पवित्र होते हैं । तथा दान करने से कमाये (प्राप्तकिये) धन की शुद्धि होती है और संतोष से मन की शुद्धि होती है । द्रव्य त्याग से प्रायश्चितों की शुद्धि होती है । तथा आत्म-विद्या वेदांत तथा अष्टाँग योग साधनादिक से आत्मा की शुद्धि होती है । (इति शुद्धि विचार)

और जो संतोष को धारण करते हैं । तथा अति अल्प आहार द्वारा शरीर को तपोमय रखते हैं, और मोक्ष शास्त्रों का नित्य मनन करते हैं । तथा सदा सर्वदा शरीर के भीतर ब्रह्म के ध्यानानन्द में मग्न रहते हैं । ऐसे सत्पुरुष जीवन्मुक्त होते तथा त्रिविधताप पर विजय करके शीघ्र ही समाधि को सिद्ध कर मनुष्य जन्म सफल बना लेते हैं । शुभम् । इतिसत्पुरुषाधिकार कर्तव्य कर्म समाधि ।

॥ अथ सद्योमुक्तिः ॥

अथ बद्ध प्राण मोक्ष प्रकरणम्

स्थिरं सुखं चासन आश्रितो यति
र्यदा जिहासुरिममंग लोकम् ।
कालेच देशे च मनो न सज्जयेत्
प्राणान्नियच्छेन्मनसा जितासुः ।

भावार्थ—जो पुरुष इस लोक के त्यागने की इच्छा करे । वह स्थिर सुखद आसन पर बैठे और शुभ काल में और पुण्य देश में मन को आसक्त न करे और प्राण वायु को जीते और मन से योग को ही मोक्ष दायक समझें ।

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य
क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ।
आत्मानमात्मन्य वरुध्य धीरो
लब्धोपशांति विरमेत कृत्यात् ॥

भावार्थ—अपनी निर्मल बुद्धि से बुद्ध्यादिकों के द्रष्टा जीव में मन को लगावे । तथा जीवात्मा को शुद्ध चैतन्य ब्रह्म में एक करके आनन्द को प्राप्त हो कर सब कृत्य से विराम करे उसके लिये फिर कोई कार्य कर्तव्य नहीं है ।

परंपदं वैष्णव मामनंति तद्.
यन्नेति नेती त्यदद्दुत्सिसृक्षवः ।

विसृज्यदौरात्म्यमनन्य सौहृदा
हृदोपगुह्यार्हं पदं पदे पदे ॥

भावार्थ—नेति नेति नहीं नहीं कहने वाले भी उसको विष्णु का परम पद कहते हैं। जो आत्मा को त्याग कर अन्य में मित्रता नहीं करते और उस पूजनीय ईश्वर को क्षण-क्षण में हृदय से मिलते हैं।

इत्थं मुनिस्तू परमेद्व्यवस्थितो
विज्ञान दृग्वीर्यं सुरंधिताशयः।
स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं
स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जित क्लमः ॥

भावार्थ—ब्रह्म का चिंतवन करके इस प्रकार मोक्षार्थी मुनि स्थित हो कर ब्रह्मज्ञान की दृष्टि के बल से विषय-वासनाओं का त्याग कर, अपनी एडी से गुदा को बन्द कर परिश्रम को जीत मूलाधार से नाभि आदि छः स्थानों में पवन को चढ़ावे।

नाभ्यां स्थितं हृद्य धिरोप्य तस्मा
दुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः।
ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्वी
स्वतालु मूलं शनकै र्नयेत ॥

भावार्थ—जो पवन नाभि के मणिपूर चक्र में स्थित है, उसको हृदय में अनाहत चक्र में ले जावे और उदानगति से

कण्ठ के विशुद्ध चक्र में ले जावे तथा बाद में वह बुद्धिमान मुनि अभ्यास के बल से तालु के मूल में वायु को शनैः शनैः ले जावे।

तस्माद् भ्रुवो रंतर मुन्नयेत
निरुद्ध सप्तायतनोऽनपेक्षः ।
स्थित्वा मुहूर्तार्धं मकुंठ दृष्टि
र्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत् परं गतः ॥

भावार्थ—बाद में कान-नेत्र, नासिका और मुख को बन्द करके प्राण वायु को दोनों भ्रकुटियों के मध्य में आज्ञाचक्र में लेजा कर बद्ध करे याने स्थिर करे और सर्व संकल्पों व यत्नों से रहित हो बुद्धि को शुद्ध पवित्र बनाले। इस प्रकार आधा मुहूर्त अर्थात् एक घड़ी प्राण बद्ध (रोक) करने से मस्तक को भेद कर वह योगी ब्रह्म में मिल जाता है।

तेनाऽमनाऽत्मान मुपैति शांत
मानंद मानंदमयोऽवसाने ।
एतां गतिं भागवतीं गतो यः
स वै पुनर्नेह विसज्जतेङ्ग ॥

भावार्थ—और वह आत्मा उस आनन्दमय परमात्मा में लय हो कर शाँत होता है। यह महापुरुषों को भागवती गति कही है। इस प्रकार की गति प्राप्त कर फिर वह योगी संसार में आसक्त नहीं होता। अर्थात् फिर जन्म नहीं लेता।

॥ इति बद्ध प्राण सद्यो मुक्ति ॥

॥ विषय: ॥

हठ मासनं च शजं च योगं मोक्षं यथाक्रमम् ।
विधिरत्र समासेन क्रमादभ्यासमाचरेत ॥

भावार्थ—ऐहलौकिक योग क्रिया में प्रवृत्ति के प्राणियों के हेतु भोजन तथा आरोग्यता के लिये योग क्रियायें आसन प्राणायाम आदि तथा पारलौकिक योग में प्राण को चढ़ाना ह० ठ० रूप मूर्छा समाधि। तथा प्राण को स्थिर करना मनोलय राजयोग तथा बद्ध प्राण से मोक्ष विधि हमने संक्षेप से वर्णन करी है। योगी जनोंने इसका क्रम से अभ्यास करना चाहियें, शुभम् ।

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रिय क्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

भावार्थ—मन-प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धैर्य पूर्वक धारण करके जो योग किया जाता है, वह अव्यभिचारिणी (शुद्ध निर्मल-निष्कलंक) धारणा सात्त्विक योग की कही है। शुभम् ।

॥ उपदेश ॥

एकान्तवास से इन्द्रियों का दमन होता है। और इन्द्रियों के दमन से मन का निग्रह होता है। तथा मनके निग्रह होने से आप से आप वासनाओं का क्षय होता है।

और वासना का क्षय ही खास परम मोक्ष का हेतु है। शुभम्।

॥ सद्गुरु ॥

दुर्लभो विषय त्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥ह.प्र.

भावार्थ—खान-पान स्त्री सुखादि जो इन्द्रियों के विषय हैं। इनका त्याग बड़ा दुर्लभ है। तथा आत्म साक्षात्कार का होना भी बड़ा दुर्लभ है। तथा सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश हो कर मन का स्थिर होना भी गुरु कृपा के विना दुर्लभ है। और यदि सद्गुरु की दया हो गई तो सहज और सुलभ है।

योगतत्त्वमिदं पूर्णं, प्रबोधिन्यां च कार्तिके।
द्विसहस्रतमेऽब्दे वैक्रमे पञ्चदशोत्तरे ॥ १ ॥
यन्न्यूनमधिकं चात्र संग्रहीतं प्रमादतः।
तत्समीकृत्य विद्वद्भिर्ग्राह्यं तत्त्वविवेचकैः ॥ २ ॥

॥ योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(तत्व)

वैज्ञानिक प्राण

अर्थात्

प्राण की क्रियाओं के द्वारा अनेकों प्रकार की चमत्कारिक सांसारिक सिद्धियों को प्राप्त करने के सरल उपाय

जनलाभार्थ मूल्य केवल १)

पुस्तक मिलने का पता—

पं० दामोदर शास्त्री भारद्वाज
श्रीरमा वैकुण्ठ
मु० पो० पुष्कर
(जि० अजमेर, राजस्थान)

बाबू रामलाल गोयल के प्रवन्ध से
आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज अजमेर में मुद्रित ।